प्रवचनसार

37 66

बनारसीदास जी

प्रस्तावना ।

पाठक महाशय! लीजिये, श्रीजिनेन्द्रदेवकी कृपासे हम आज काशीनिवासी कविवर बाबू वृन्दावनजीका प्रवचनसार परमागम भी लेकर उपस्थित हैं। इसका एक बार आद्योपान्त स्वाध्याय करके यदि आप अपनी आत्माका कुछ उपकार कर सकें, तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे।

नदिसंघके ग्रन्थके मूलकर्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्य विक्रमसंवत् ४९ में आपके पट्टपर विद्यमान थे, ऐसा पट्टावलियोंसे पता लगता है। जिनमेंसे बनाये हुए ८४ प्राभृत (पाहुड़) ग्रन्थ कहे जाते हैं, पंचास्ति इस समय आठ दश पाहुड़ उपलब्ध हैं। और उनमें हैं। [illegible]काय, नाटकसमयसार, तथा प्रवचनसार ये तीन बहुत प्रसिद्ध हैं। इन तीनोंकी द्वितीयसिद्धान्तमें अथवा द्वितीय श्रुतस्कंधमें गणना है। और इनमें शुद्ध निश्चयनयको प्रधान मानकर कथन किया गया इस प्राभृतत्रयीमेंसे पंचास्तिकाय और नाटकसमयसार छप चुके हैं। केवल प्रवचनसार रह गया था, सो आज यह भी मुद्रित होकर तयार है। यद्यपि भाषावचनिका तथा मूलपाठके विना इस ग्रन्थका सर्वांगपूर्ण उद्धार नहीं कहलावेगा, तो भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि, प्रवचनसार प्रकाशित नहीं हुआ है।

इस ग्रन्थकी संस्कृतमें दो टीकाँ उपलब्ध हैं, एक श्रीअमृत-

---

१ इन दोनों ही संस्कृत टीकाओंके छपनेका प्रबन्ध हो रहा है।

२ कुन्दकुन्दके तीनों ग्रन्थोंपर अमृतचन्द्रकी टीकायें हैं और वे सब प्राप्य हैं। अमृतचन्द्राचार्य संवत् ९६२ में नंदिसंघ के पट्टपर विद्यमान थे।

चन्द्रसूरिकी, तत्त्वदीपिका टीका और दूसरी श्रीजयसेनाचार्य-की टीका । इनमेंसे तत्त्वदीपिका टीकाके आधारसे आगरानिवासी स्वर्गीय पंडित हेमराजजीने विक्रम संवत् १७०९ में शाहजहाँ बादशाहके राज्यकालमें भाषा वचनिका बनाई है । और इसी भाषा वचनिकाके आधारसे काशीनिवासी कविवर वृन्दावनजीने यह पद्यबद्ध टीका बनाई है । यह टीका उन्होंने संवत् १९०५ में अर्थात् आजसे ६० वर्ष पहले पूर्ण की थी ।

कविवर वृन्दावनजीका जीवनचरित्र और उनके ग्रन्थोंकी आलोचना हमने जैनहितैषीके गतवर्षके उपहारग्रन्थ वृन्दावनविलास[illegible] [illegible] खूब विस्तारसे की है । इसलिये [illegible] उसकी यहांपर [illegible]पढ़नेकी [illegible]नेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती [illegible] [illegible] [illegible]योंको [illegible]चि हो, वे उक्त ग्रन्थ मंगाकर देख [illegible] [illegible] शोधन

इस ग्रन्थको हमने दो हस्तलिखित प्रतियोंके अनुसार सं[illegible] स्वयं करके छपाया है । जिनमेंसे एक तो कविवर वृन्दावनजीकी [illegible]भंडा-हाथकी लिखी हुई प्रथम प्रति थी, जो हमें काशीके सरस्वती[illegible] रसे प्राप्त हुई थी और दूसरी करहल निवासी पंडित धर्मसहायजीके द्वारा प्राप्त हुई थी । यह दूसरी प्रति भी पहलीके समान प्रायः शुद्ध है और शायद पहली प्रतिपरसे ही नकल की हुई है ।

कविवर वृन्दावनजीकी लेखनशैली आदिसे अन्त तक एक सी नहीं मिलती । उन्होंने एक ही शब्दको कई प्रकारसे लिखा है । मैं में, हैं हें, तें तैं तै, कै के, नहिं नहि नहीं, होहिं होँहिं होहि, सों

१ यह टीका बम्बई यूनीवर्सिटीने अपने एम. ए. के संस्कृत कोर्समें भरती की है ।

२ हेमराजजीने भी तीनों ग्रन्थोंकी भाषा वचनिका बनाई है ।
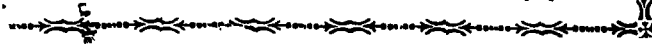
सौं, त्यों त्यौं, कह्यो कह्यौ, विषै विषैं विषें, आदि जहां जैसा जीमें आया है लिखा है। जान पड़ता है ऐसे शब्दोंके लिखनेका उन्होंने कोई नियम नहीं बनाया था, विकल्पसे वे सबको शुद्ध मानते थे। उनके लेखमें श, ष, और सकी भी ऐसी ही गड़बड़ थी। जहां कविताके अनुप्रासादि गुणोंका कोई प्रतिबन्ध नहीं था, वहां भी उन्होंने शुद्ध शब्दपर ध्यान देकर शकारादिका प्रयोग नहीं किया है। सर्वत्र इच्छानुसार ही किया है। वर्तमान लेखनशैलीसे विरुद्ध होनेके कारण हमने ऐसे स्थानोंमें जहां कि तुकान्त अनुप्रासादिकी कोई हानि नहीं होती थी, शुद्ध शब्दोंके अनुसार ही शकार सकारका संशोधन कर दिया है। तें तैं के कै आदिके संशोधनमें कहीं २ मूल प्रतिके समान ही विकल्प हो गये हैं, तोभी जहां तक हमसे बन पड़ा है आदिसे अन्त तक एक ही प्रकारसे लिखा है।

कविवरकी भाषामें जहां तहां पुंलिंगके स्थानमें स्त्रीलिंगका प्रयोग किया गया है। सो भी ऐसी जगह जहां हमारे पाठकोंको अटपटा जान पड़ेगा। हमारे कई मित्रोंका कथन था कि, इसका संशोधन कर देना चाहिये। परन्तु हमने इसे अच्छा न समझा। ऐसा करनेसे ग्रन्थकर्ताके देशकी तथा समयकी भाषाका क्या रूप था, इसके जाननेका साधन नष्ट हो जाता है। संशोधनकर्ताका यही कार्य है कि, वह दो चार प्रतियोंपरसे लेखकोंकी भूलसे जो अशुद्धियां हो गई हैं, उनका संशोधन कर देवे। यह नहीं कि, मूलकर्ताकी कृतिमें ही फेरफार कर डाले। खेद है कि, आजकल बहुतसे ग्रन्थप्रकाशक इस नियमपर बिलकुल ध्यान नहीं देते हैं।

पहले यह ग्रन्थ मूल, संस्कृतटीका और भाषावचनिकाके साथ

छपनेके लिये रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाके प्रबंधकर्ताओंने लिखवाया था। परन्तु जब टीका तयार न हो सकी और शास्त्रमालाके दूसरे संचालककी इच्छा इसे प्रकाशित करनेकी न दिखी, तब इसके पृथक् छपनेका प्रबंध किया गया। केवल गाथा और उनकी संस्कृतछाया देनेसे संस्कृत नहीं जाननेवालोंको कुछ लाभ नहीं होगा, ऐसा सोचकर इसमें केवल मूल गाथाओंका नम्बर दे दिया है। इससे जो लोग मूलग्रन्थ तथा संस्कृतटीकासे अर्थ समझना चाहेंगे, उन्हें लाभ होगा।

इस ग्रन्थकी टीकाओंमें प्रत्येक गाथाके प्रारंभमें शीर्षकके रूपमें छोटी २ सी उत्थानिकायें हैं। यदि वे इसके साथ लगा दी जातीं, तो बहुत लाभ होता। परन्तु ग्रन्थके कई फार्म छप चुकनेपर यह बात हमारे ध्यानमें आई, इस लिये फिर कुछ न कर सके। पाठकगण इसके लिये हमें क्षमा करेंगे। यदि कभी इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकाश करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो यह त्रुटि पूर्ण कर दी जावेगी। परन्तु जैनसमाजमें ग्रन्थोंका इतना आदर ही कहां है, जो ऐसे ग्रन्थोंकी दूसरी आवृत्तिकी आशा की जावे।

हम ऊपर कह चुके हैं कि, यह ग्रन्थ मूलग्रन्थका अनुवाद नहीं, किन्तु टीकाका पद्यानुवाद अथवा पद्यमयी टीका है। इसमें पंडित हेमराजजीकी वचनिकाका प्रायः अनुवाद किया गया है। कहीं २ तो वचनिकाका एक शब्द भी नहीं छोड़ा है। हमारी इस बातपर विश्वास करनेके लिये पाठकोंको तीसरे अधिकारकी २३ वीं गाथाकी कविता पंडित हेमराजजीकी वचनिकासे मिलाकर देखना चाहिये। वचनिकाके साथ इस अनुवादके दो चार स्थान मिलाकर दिखाने और उनकी आलोचना करने-

का हमारा विचार था, जिससे यह ज्ञात हो जाता कि कविवर वृन्दावनने मूल ग्रन्थके तथा टीकाओंके अभिप्रायोंको कहांतक समझकर यह अनुवाद किया है । परन्तु खेद है कि, अवकाश न मिलनेसे यह विचार मनका मनहीमें रह गया ।

इस ग्रन्थमें शुद्ध निश्चयनयका कथन है । इसलिये इस ग्रन्थके स्वाध्याय करनेके अधिकारी वे ही लोग हैं, जो जैन-धर्मके निश्चय और व्यवहारमार्गके मर्मज्ञ हैं । व्यवहार और निश्चयका स्वरूप समझे विना इस ग्रन्थके पाठक अर्थका अनर्थ कर सकते हैं । और उनकी वही गति हो सकती है, जैसी समयसारके अध्ययनसे बनारसीदासजी की हुई थी । अत एव पाठकोंको चाहिये कि, नयमार्गका भलीभाँति विचार करके इसका स्वाध्याय करें, जिसमें आत्माका यथार्थ कल्याण हो ।

इस ग्रन्थके संशोधनमें जहांतक हमसे हो सका है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं की है । तो भी भूल होना मनुष्यके लिये एक सामान्य बात है । इस लिये यदि कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, तो विशेषज्ञोंको सुधार करके पढ़ना चाहिये और हमपर क्षमा-भाव धारण करना चाहिये । अलमतिविस्तरेण विज्ञेषु—

सरस्वतीसेवक—

बम्बई । }
१०—१०—०८ }

नाथूराम प्रेमी
देवरी (सागर) निवासी ।

सूचीपत्र।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

ओंनमोऽनेकान्तवादिने जिनाय।

*पीठिका।

मंगलाचरण—षट्पद।

सिद्धिसदन बुधिवदन, मदनमदकदन दहन रज।
लब्धि लसन्त अनन्त, चारु गुनवंत संत अज॥
दुविधि धरमविधि कथन, अविधि-तम-मथन-दिवाकर।
विघ्न निघ्नकरतार, सकल-सुख-उदय-सुधाधर॥
शतइन्द्रवृन्द पदवंद भव, दन्द फन्द निःकन्द कर।
अरिशोष मोष-मग-पोष निर-दोष जयति जिनराज वर॥ १॥

दोहा।

सिद्धशिरोमनि सिद्धिप्रद, शुद्धचिदातम भूप।
ज्ञानानंदसुभावमय, वंदन करहुं अनूप॥ २॥
नमों देव अरहंतको, सहित अनंत चतुष्ट।
दोषरहित जो मोषमग, भाषि करत सुख पुष्ट॥ ३॥
आचारज उवझाय मुनि, तीनों सुगुरु मनाय।
शिवमग साधत जतनजुत, बंदों मनवचकाय॥ ४॥

---

* अथ श्रीप्रवचनसारपरमागम अध्यात्मविद्या श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत मूलप्राकृतगाथा ताकी संस्कृतटीका श्रीअमृतचन्द्रआचार्य करी ताकी देशभाषावचनिका पांडे हेमराजजीने रची है। ताहीके अनुसारसों वृन्दावन छन्द लिखे है। (प्रथमप्रति)

सीमंधरको आदि जे, तीर्थंकर जिन बीस।
अब विदेहमें हैं तिन्हैं, नमों समवसृतईश ॥ ५ ॥
वानी खिरत त्रिकाल जसु, सुनहिं सकल चहुँसंग।
केई मुनिव्रत अनुव्रत, धारहिं पुलकितअंग ॥ ६ ॥
केई सहज सुभावमें, लीन होय मुनिवृंद।
तीनों जोग निरोधिके, पावैं सहजानंद ॥ ७ ॥
वृषभादिक चौवीस जे, वर्तमान तीर्थेश।
तिनको बंदत वृंद अब, मेटो कुमति कलेश ॥ ८ ॥
वृषभसेनको आदि जे, अंतम गौतमस्वामि।
चौदहसै त्रेपन सुगुरु, गणधरदेव नमामि ॥ ९ ॥
अनेकान्तवानी नमों, वर्जित सकलविरोध।
वस्तु जथारथ सिद्धि कर, डारत मनमल शोध ॥ १० ॥
जोई केवलज्ञान है, स्यादवाद है सोय।
भेद प्रतच्छ परोच्छको, वरतत है भ्रम खोय ॥ ११ ॥
वस्तु अनंत धरममयी, स्यादवादके रूप।
सो इकंत सों सधत नहिं, यों भाषी जिनभूप ॥ १२ ॥
जेते धरम तिते पृथक, गहें अपेच्छा सिद्ध।
रहितअपेच्छा सधत नहिं, होत विरुद्ध असिद्ध ॥ १३ ॥
सहितअपेच्छा जो वचन, सो सब वस्तुस्वरूप।
रहित अपेच्छा जो वचन, सो सब भ्रमतमकूप ॥ १४ ॥
अनेकांत एकांतकी, इतनी है पहिचान।
एक पच्छ एकांत मत, अनेकांत सब थान ॥ १५ ॥

अनेकांतमतकी यहां, वरतै नहिं एकांत ।
अनेकांत हू है यहां, अनेकांत निरभ्रांत ॥ १६ ॥
सम्यग्ज्ञान प्रमान है, नय हैं ताके अंग ।
साधनसाध्यदशाविषें, इनकी उठत तरंग ॥ १७ ॥
वस्तुरूप साधनविषें, करत प्रमान प्रवेश ।
नयके द्वारन वरनियत, ताके सकल विशेश ॥ १८ ॥
लच्छविषें जो वसत नित, लच्छन ताको नाम ।
जाके द्वार विलोकिये, लच्छ अवाध ललाम ॥ १९ ॥
इत्यादिक जे न्याय मग, नयनिच्छेपविधान ।
जिनवानीसों मिलत सब, सुपरभेदविज्ञान ॥ २० ॥
तातें जिनवानी नमों, अभिमतफलदातार ।
मो मनमंदिरमें सदा, करो प्रकाश उदार ॥ २१ ॥

दुमिलावृत्त । (आठ सगण)

सब वस्तु अनंत गुनातमको, जु यथारथरूप सुसिद्ध करै ।
परमान नयौर[1] निछेपदशा करि, मोहमहाभ्रमभाव हरै ॥
जसु आदि सु अंत विरोध नहीं, नित लच्छन स्यादसुवाद धरै ।
वह श्रीजिनशासनको भवि वृंद, अराधत प्रीति प्रतीति भरै॥२२॥

दोहा ।

पुनि प्रनमों परब्रह्ममय, पंच परमगुरु रूप ।
जासु ध्यानतें पाइये, सहजसुखामृतकूप ॥ २३ ॥

---

१ नय और ।

आदि अकार हकार सिर, रेफनाद जुतविंदु ।
सिद्धवीज जपि सिद्धिप्रद, पूरन शारदइंदु ॥ २४ ॥
मैाया वीज नमों सहित, पंचवरन अभिराम ।
मध्य बीज अरहंत जसु, स्वधासुधारसधाम ॥ २५ ॥
निजघट-छीरसमुद्रमधि, मनअंबुज निरमाप ।
वर्ग पत्र प्रति मध्य तसु, श्रीअरहंत सुथाप ॥ २६ ॥
स्वासोस्वास निरोधिके, पूरनचंद्र समान, ।
करो ध्यान भवि वृंद जहँ, झरत सुधा अमलान ॥ २७ ॥
पुनि वाचक इहि वरनको, शुद्धब्रह्म अरहंत ।
सहित अनंत चतुष्ट तिहिँ, ध्यावो थिरचित संत ॥२८॥
इमि दृढ़तर अभ्यास करि, पुनि तिहि सम निजरूप ।
ध्यावो एकाकार थिर, तवहिँ होहु शिवभूप ॥ २९ ॥
ये ही मंगलमूल जग, सर्वोत्तम हैं येह ।
इनकी शरनागत रहो, उर धरि परम सनेह ॥ ३० ॥

सत्यार्थ मोक्षमार्गप्रवृत्तिका कथन ।

श्रीमत वीर जिनिंद जब, कीन्हों शिवपुर गौन ।
तब इत बासठ वरस लगि, खुल्यो रह्यो शिवभौन ॥ ३१ ॥
गौतमस्वामी शिव गये, फेरि सुधर्म्मास्वाम ।
पुनि जम्बूस्वामी लही, मुक्तिधाम अभिराम ॥ ३२ ॥

---

१ अर्हँ । २ ह्रीं ।

ऐसे पंचमकालमें, बासठ बरस प्रमान ।
रह्यो केवलज्ञान इत, भ्रमतम-भंजन-भान ॥ ३३ ॥
ता पीछें श्रुतकेवली, भये पंच परधान ।
वरष एक शतके विषें, पूरन ज्ञाननिधान ॥ ३४ ॥
तिस पीछेसों एकसौ, त्यासी वरषमझार ।
ग्यारअंग दशपूर्वधर, भये ग्यार अनगार ॥ ३५ ॥
वरष दोयसौ वीसमें, तिन पीछे मुनि पंच ।
भये इकादश अंगके, पाठी समकित संच ॥ ३६ ॥
तिस पीछेसों एकसौ, ठारै वरष मझार ।
चार भये अनगार वर, एक अंगके धार ॥ ३७ ॥

श्रीजैनसिद्धान्तोंकी रचनासम्बन्धी कथन ।

कवित्तछन्द (३१ मात्रा)

भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवलि, जब लग रहे यहां परधान ।
तब लग द्वादशांगशासनको, रह्यो प्ररूपन पूरनज्ञान ॥
तहँ निश्चय व्यवहाररूप जो, शिवमारगका सुखद विधान ।
सो परिवर्तत रह्यो जथारथ, यों भवि वृंद करो श्रद्धान ॥३८॥
तिस पीछे इत कालदोषतें, अंगज्ञानकी भई विछित्ति ।
तब कितेक मुनि शिथिलाचारी, भये किई तिन पृथक् प्रवृत्ति ॥
तिनसों श्वेताम्बर मत प्रगट्यो, रचे सूत्र विपरीत अहित्त ।
सो अब ताईं प्रगट देखियत, यह विरोधमारगकी रित्त ॥ ३९ ॥

दोहा।

अब वरनों जिहि भाँति इत, रह्यो जथारथपंथ।
श्रीजिनसूत्र प्रमाण करि, सुखददशा निरग्रंथ ॥ ४० ॥

चोपाई।

जे जिनसूत्र सीख उर धारी। रहे आचरन करत उदारी ॥
तिनकी रही जथारथ चरिया। तथा प्ररूपन श्रुतअनुसरिया ४१
तेई परम दिगंबर जानो। साँचे ग्रंथ पंथ ठहरानो ॥
वर्द्धमान शिवथान लहीते। छसै तिरासी वरष वितीते ४२
दूजे भद्रबाहु आचारज। प्रगटे तिहि मगमें गुनआरज ॥
तिनकी परिपाटीमें भाई। किते वरष पीछे मुनिराई ॥ ४३ ॥
जिनसिद्धान्तनकी परिवृत्ती। करी जाहि विधि सुनो सुवृत्ती ॥
जयशशिरचित[1] वचनिका पावन। समयसारतें लिखों सुहावन४४

दोहा।

एक भये धरसेन गुरु, तिनको सुनो बखान।
जैसो ज्ञान रह्यो तिन्हें, श्रुतपथतें परमान ॥ ४५ ॥

करखाछन्द (मात्रा ३७)

अग्रणीपूर्वके, पाँचवें वस्तुका,
महाकरमप्रकृति, नाम चौथा।
इस पराभृत्तका, ज्ञानतिनको रहा,
यहां लग अंगका, अंश तौ था ॥

---

१ पं. जयचंद्रजीकृत समयसारकी भाषाटीका।

सो पराभृतको भूतबलि पुंष्परद,
दोयमुनिको सुगुरुने पढ़ाया ।
तास अनुसार, षटखंडके सूत्रको
बांधिके पुस्तकोंमें मढ़ाया ॥ ४६ ॥
फिर तिसी सूत्रको, और मुनिवृन्द पढि,
रची विस्तारसों तासु टीका ।
धवल महाधवल जयधवल आदिक सु-
सिद्धान्तवृत्तान्तपरमान ठीका ॥
तिन हि सिद्धांतको, नेमिचंद्रादि-
आचार्य, अभ्यास करिके पुनीता ।
रचे गोमट्टसारादि बहु शास्त्र यह
प्रथमसिद्धांत-उतपत्ति-गीता ॥ ४७ ॥

दोहा ।

जीव करम संजोगसे, जो संसृति परजाय ।
तासु सुगुरु विस्तार करि, इहां रूप दरसाय ॥ ४८ ॥
गुनथानक अरु मार्गना, वरनन कीन्ह दयाल ।
भविजनके उद्धारको, यह मग सुखद विशाल ॥४९॥

कवित्त छन्द । (३१ मात्रा)

पर्यायार्थिक नय प्रधान कर, यहां कथन कीन्हों गुरुदेव ।
याहीको अशुद्धद्रव्यार्थिक, नय कहियत है यों लखि लेव ॥

१ पुष्पदन्त ।

तथा अध्यातमीक भाषा करि, यह अशुद्ध निहचै नय भेव ।
तथा याहि विवहारहु कहिये, यह सब अनेकांतकी टेव ॥५०॥

द्वितीयसिद्धान्तोत्पत्ति । कवित्तछन्द ।

बहुरि एक गुणधर नामा मुनि, भये तिसी पथमें परधान ।
तिनको ज्ञानप्रवादपूर्वका, दशम वस्तुका त्रितिय विधान ॥
तिस प्राभृतका ज्ञान रहा तब, तिनसों नागहस्ति मुनि जान ।
तिन दोउनतें यतिनायक मुनि, तिस प्राभृतको पढ़ा निदान ५१
तब यतिनायक सुगुरु कृपाकर, तिसही प्राभृतके अनुसार ।
सूत्र चूर्णिकारूप रचा सो, छह हजारका शास्त्र उदार ॥
ताकी टीका समुद्धरन गुरु, रची सु बारह सहस विचार ।
यों आचारज परंपरातें, कुंदकुंद मुनि ताहि निहार ॥५२॥

दोहा ।

इस सिद्धान्तरहस्यके, कुंदकुंद गुरुदेव ।
रसिक भये ज्ञाताभये, नमों तिन्हें वसुभेव ॥ ५३ ॥
यों दुतीय सिद्धांतकी, है उतपत्ति पुनीत ।
परिपाटी परमान करि, लिखी इहां निरनीत ॥ ५४ ॥

मनहरण (३१ वर्ण)

यामें ज्ञानको प्रधान करिके प्रगटपने,
शुद्ध दरबारथीक नयको कथन है ।
अध्यातमबानी आतमाको अधिकार यातें,
याको शुद्ध निश्चैनय नाम हू नथन है ॥

तथा परमारथ हू नाम याको जथारथ,
इहां परजाय नय गौनता गथन है ।
परबुद्धित्यागी जो स्वरूप शुद्धहीमें रमें,
सोई कर्म नाश शिव होत यों मथन है ॥ ५५ ॥

कवित्त ।

या प्रकार गुरुपरंपरातें, यह दुतीयसिद्धान्त प्रमान ।
शुद्ध सुनयके उपदेशक इत, शास्त्र विराजत हैं परधान ॥
समयसार पंचास्तिकाय श्री,-प्रवचनसार आदि सुमहान ।
कुंदकुंद गुरु मूल बखानें, टीका अमृतचन्द्रकृत जान ॥ ५६ ॥

कविप्रार्थना ।

तामें प्रवचनसारकी, वाँचि वचनिका मंजु ।
छन्दरूपरचना रचों, उर धरि गुरुपदकंजु ॥ ५७ ॥
कहँ परमागम अगम यह, कहँ मम मति अतिहीन ।
शशि सपरशके हेतु जिमि, शिशु कर ऊंचौ कीन ॥५८॥
तिमि मम निरख सुधीटता, हँसि कहि हैं परवीन ।
काक चहत पिक-मधुर-धुनि, मूक चहत कविकीन ॥५९॥

चौपाई ।

यह परमागम अगम बताई । मो मति अल्प रचत कविताई ।
सो लख हँसि कहिहैं मति धीरा । शिरिषसुमनकरि बेधत हीरा ६०

दोहा ।

बाल मराल चहै जथा, मन्दिरमेरु उठाव ।
बालबुद्धि भवि वृंद तिमि, करन चहत कविताव ॥ ६१ ॥

पूरव सुकविसहायतें, जिनशासनकी छाँहिं।

हूं यह साहस कीन है, सुमरि सुगुरु मनमाँहिं ॥ ६२ ॥

मूलग्रन्थअनुसार जो, भाषा बनै प्रबंध।

तौ उपमा सांची फबै, "सोना और सुगंध" ॥ ६३ ॥

चौपाई।

मैं तो बहुत जतन चित राखी। रचि हौं छंद जिनागम शाखी।

पै प्रमादतें लखि कहुं दूषन। शोधि शुद्ध कीजे गुनभूषन ॥६४॥

दोहा।

सज्जन चाल मराल सम, औगुन तज गुन लेत।

शारद[1]वाहन वारि तज, ज्यों पयपान करेत ॥ ६५ ॥

षट्पद।

जब लगि वस्तु विचार करत, कवि काव्य करनहित।

तब लगि विषयविकार रुकत, शुभध्यान रहत चित ॥

ऐसे निजहित जान, बहुरि जब जगमें व्यापत।

तब जे बाँचहिं सुनहिं, तिन्हें है ज्ञान परापत ॥

यों निज परको हित हेत लखि, बृंदावन उद्यम करत।

परमागम प्रवचनसारकी, छंदबद्ध टीका धरत ॥ ६६ ॥

प्रवचनसारग्रन्थस्तुति।

नय नय अनेकान्त दुतिधार। पय पय सुपरबोध करतार।

लय लय करत सुधोरस धार। जय जय सो श्रीप्रवचनसार ॥६७॥

---

१ हंस। २ दूसरी प्रति में 'समामृत' पाठ है।

अरिल्लछन्द ।

द्वादशांगको सार जु सुपरविचार है ।
सो संजमजुत गहत होत भव पार है ॥
तासु हेत यह शासन परम उदार है ।
यातें प्रवचनसार नामनिरधार है ॥ ६८ ॥

मूलग्रन्थकर्त्ता श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकी स्तुति ।

अशोकपुष्पमंजरी ।

जासके मुखारविंदतें प्रकाश भास वृंद,
स्यादवाद जैन वैन इंदु कुंदकुंदसे ।
तासके अभ्यासतें विकाश भेदज्ञान होत,
मूढ सो लखै नहीं कुबुद्धि कुंदकुंदसे ॥
देत हैं अशीस शीस नाय इंद्र चंद्र जाहि,
मोह-मार-खंड मारतंड कुंदकुंदसे ।
शुद्धबुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्धरिद्धिसिद्धिदा,
हुए, न हैं, न होंहिंगे, मुनिंद कुंदकुंद से ॥ ६९ ॥

इति भूमिका ।

ओंनमः सिद्धेभ्यः

काशीनिवासी कविवरवृन्दाबनविरचित—

प्रवचनसार।

मंगलाचरण। षट्पद।

स्वयं सिद्धिकरतार, करै निज कर्म शर्मनिधि।
ओपै करण स्वरूप, होय साधन सोधै विधि॥
संप्रदानता धरै, आपको आप समप्पै।
अपादानतें आप, आपको थिर कर थप्पै॥
अधिकरण होय आधार निज, वरतै पूरणब्रह्म पर।
इमि षट्विधिकारकमय रहित, विविध एक चिधि अज अमर॥१॥

दोहा।

महततत्त्व महनीय मह, महाधाम[1] गुणधाम।
चिदानंद परमातमा, बंदौं रमताराम॥ २॥
कुनयदमनि सुवचन अवनि, रमन स्यातपद शुद्धि।
जिनवानी मानी मुनिपै[2], घटमें करहु सुबुद्धि॥ ३॥

चौपाई।

पंच इष्ट पदके पद वन्दों। सत्यरूप गुरुगुण अभिनन्दों।
प्रवचनसारग्रन्थकी टीका। बालबोधभाषामय नीका॥ ४॥

---

१ तेज। २ मुनिराज।

रचौं आप परको हितकारी । भव्य जीव आनन्दविथारी ॥
प्रवचन जलधि अर्थ जल लैहै । मति-भाजन-समान जल पैहै ५

दोहा ।

अमृतचंदकृत संसकृत, टीका अगम अपार ।
तिन अनुसार कहौं कछू, सुगम अल्प विसतार ॥ ६ ॥

---

(१)

मतगयन्द ।

श्रीमत वीर जिनेश यही, तिनके पद वंदत हौं लवलाई ।
वन्दत वृन्द सुरिन्द जिन्हें, असुरिन्द नरिन्द सदा हरषाई ॥
जो चउ घातिय कर्म महामल, धोइ अनन्त चतुष्टय पाई ।
धर्म दुधातमके करता प्रभु, तीरथरूप त्रिलोकके राई ॥ ७ ॥

चौपाई ।

वरतत है शासन अब जिनको । उचित प्रनाम प्रथम लिख तिनको
कुंदकुंद गुरु वन्दन कीना । स्यादवादविद्या परवीना ॥ ८ ॥

(२)

मनहरण ।

शेष तीरथेश वृषभादि आदितेईस औ,
सिद्ध सर्व शुद्ध बुद्धिके करँडवत हैं ।
जिनको सदैव सदभाव शुद्धसत्ताहीमें,
तारनतरनको तेई तरंडवत हैं ॥

आचारज उवझाय साधुके सुगुन ध्याय,
पंचाचारमाहिं वृन्द जे अखंडवत हैं।
येई पंच पर्म इष्ट देत हैं अभिष्ट शिष्ट,
तिनें भक्तिभावसों हमारी दंडवत हैं ॥ ९ ॥

दोहा।

देव सिद्ध अरहंतको, निज सत्ता आधार।
सूर साधु उवझाय थित, पंचाचारमझार ॥ १० ॥
ज्ञान दरश चारित्र तप, वीरज परम पुनीत।
येही पंचाचारमें, विचरहिं श्रमण सनीत ॥ ११ ॥

(३)

अशोकपुष्पमंजरी।

पंच शून्य पंच चार योजन प्रमान जे,
मनुष्यक्षेत्रके विषैं जिनेश वर्तमान हैं।
तासके पदारविंद एक ही सु वार वृंद,
फेर भिन्न भिन्न वंदि भव्य-अब्ज-भान हैं ॥
वर्तमान भर्तमें अबै सुवर्तमान नाहिं,
श्रीविदेहथानमें सदैव राजमान हैं।
द्वैत औ अद्वैतरूप वंदना करौं त्रिकाल,
सो दयाल देत रिद्धि सिद्धिके निधान हैं ॥१२॥

दोहा।

आठौं अंग नवाइकै, भूमें दंडाकार।
मुखकर सुजस उचारिये, सो वंदन विवहार ॥ १३ ॥

निज चैतन्य सुभावकरि, तिनसों है लवलीन ।
सो अद्वैत सुवन्दना, भेदरहित परवीन ॥ १४ ॥

(४)

माधवी ।

करि वंदन देव जिनिंदनकी, ध्रुव सिद्ध विशुद्धनको उर ध्यावों ।
तिमि सर्व गनिंद गुनिंद नमों, उदघाट कपाटक ठाट मनावों ॥
मुनि वृंद जिते नरलोकविषें, अभिनंदित है तिनके गुन गावों ।
यह पंच पदस्त प्रशस्त समस्त, तिन्हें निज मस्तक हस्त लगावों १५

(५)

इनके विसरामको धाम लसै, अति उज्वल दर्शनज्ञानप्रधाना ।
जहँ शुद्धुपयोग सुधारस वृंद, समाधि समृद्धिकी वृद्धि बखाना ॥
तिहिको अवलंबि गहों समता, भवताप मिटावन मेघ महाना ।
जिहितें निरवान सुथान मिलै, अमलान अनूपम चेतन वाना १६

(६)

चौबोला ।

जो जन श्री जिनराजकथित नित, चित्तविषें चारित्त धरै ।
सम्यकदर्शनज्ञान जहां, अमलान विराजित जोति भरै ॥
सो सुर इंद वृंद सुख भोगै, असुर इंदको विभव वरै ।
होय नरिंद सिद्धपद पावै, फेरि न जगमें जन्म धरै ॥ १७ ॥

(७)

निहचै निज सुभावमें थिरता, तिहि चारितकहँ धरम कहै ।
सोई पर्म धर्म समतामय, यों सर्वज्ञ कृपाल महै ॥

सोरठा।

न विन परिनाम, परनति दरब विना नहीं।
तथा नयरजवाम, सहित अस्ति जिनवर कही ॥ ३२ ॥

मत्स्ये मनहरण।

मधा कुमती कहें द्रव्यमें न गुन होत,
न्य और गुननको न्यारो न्यारो थान है।
दु:खादसतें कहावै द्रव्य गुनी नाम,
उदयदंड धारै तब दंडी परधान है ॥
द दुखदवादी कहै यह तो विरोध बात,
गति तिन द्रव्य जैसे खरको विषान है।
नुज़िये स तैंने द्रव्य पहिचाने कैसे,
रिना न बनि कहा थान विद्यमान है ॥ ३३ ॥
, एक गोके विचित्रविधि परिनाम धरै,
दूध दधि आदि वा ही ताको विस्तार है।
ही दरब परिनाम विना रहै नाहिं,
परिनामहूको वृन्द दरब अधार है ॥
परजायवंत द्रव्य भगवंत कही,
सुभाव सुभावी ऐसे गही गनधार है
हेम द्रव्य गुन गौरव सुपीततादि,
रजाय कुंडलादि माहिं निरधार है ॥ ३४ ।

धर्म सरूप जबै प्रनवै यह, आतम आप अ
शुद्धुपयोग दशा गहिकै, सु लहै निरवान सी। ख्यात
ोत जबै शुभरूपपयोग, तबै सुरगादि वृन्द जात
आपहि है अपने परिनामनिको फल भो सी ॥ ४६ ॥ ॥

मोतीदाम।

जबै जिय धारत चारित शुद्ध। तबै पद पावत सिद्ध शु
सराग चरित्त धरै जब चित्त। लहै सुरगादिविषै वर वि त

दोहा।

तातैं शुद्धुपयोगके, जे सम्मुख हैं जीव।
तिनको शुभ चारित्रमहँ, रमनो नाहिं सदीव ॥ ३

(१२)

माधवी ।

यह आतमराम, अनंत कलेश निरंतर पायो ।
तिरजंचनिमें, बहुधा नरकानलमें पचि आयो ॥
ो परिवर्त्तनको, इहि भांति अनादि कुकाल गमायो।
नै गहो सुख कन्द, जिनिंद जथा भवि वृन्द बतायो॥

दोहा ।

वको बीज है, अशुभरूप परिनाम ।
य अनन्त दुख, भुगते आतमराम ॥ ४० ॥
नीच पद, इत्यादिक फल देत ।
गति, याको सहज निकेत ॥ ४१ ॥
अव्रत विषय कषाय ।
सकत, एकौ धर्म उपाय ॥ ४२ ॥
षैं, है विवहारिक धर्म ।
बहु, तप संयम शुभकर्म ॥ ४३ ॥
चित धारिये, लखिये आतमरूप ।
मगको सहकार यह, यों भाषी जिनभूप ॥ ४४ ॥

(१३)

मनहरण ।

उपयोग सिद्ध भयो हैं प्रसिद्ध जिन्हें,
सो सिद्ध अरहंतनके गाइयतु है ।

आतम सुभावतैं उपजो साहजीक सुख,
सबतैं अधिक अनाकुल पाइयतु है ॥
अच्छ पच्छतैं विलच्छ विषैसों रहित स्वच्छ,
उपमाकी गच्छसों अलच्छ ध्याइयतु है ।
निराबाध हैं अनन्त एकरस रहैं संत,
ऐसे शिवकंतकी शरन जाइयतु है ॥ ४

(१४)

शुद्धउपयोग जुक्त जती जे विराजत हैं,
सुनो तासु लच्छन विचच्छन बुधारसी ।
भलीभांति जानत जथारथ पदारथको,
तथा श्रुतसिंधु मथि धारत सुधारसी ।
संजमसों मंडित तपोनिधान पंडित
रागदोष खंडिके बिहंडत मुधारसी ।
जाके सुख दुखमें न हरष विषाद
सोई पर्मधर्मधार धीर मो उधारसी ।

दोहा ।

जो मुनि सुपरविभेद धरि, करे शुद्ध सरधान ।
निज सरूप आचरनमें, गाड़ै अचल निशान ॥ ६
सकल सूत्र सिद्धान्तको, भलीभांति रस लेत ।
तप संजम साधै सुधी, रागदोष तजि देत ॥ ४८
जीवन मरनविषै नहीं, जाके हरष विषाद ।
शुद्धपयोगी साधु सो, रहित सकल अपवाद ॥

(१५)

मत्तगयंद ।

जो उपयोग विशुद्ध विभाकर, मंडित है चिन्मूरतराई ।
सो वह केवलज्ञानधनी, सब ज्ञेयके पार ततच्छन जाई ॥
घाति चतुष्टय तास तहाँ, स्वयमेव विनाश लहैं दुखदाई ।
शुद्धपयोग परापतिकी, महिमा यह वृंद मुनिंदन गाई ॥५०॥

षट्पद ।

जिस आतमके परम सुद्ध, उपयोग सिद्ध हुव ।
तिसके जुग आवरन, मोहमल विघन नास ध्रुव ॥
सकल ज्ञेयके पार जात सो, आप ततच्छन ।
ज्ञान फुरन्त अनन्त, सोइ अरहंत सुलच्छन ॥
महिमा महान अमलान नव, केवल लाभ सुधाकरन ।
शिवथानदान भगवानके, वृंदावन वंदत चरन ॥ ५१ ॥

(१६)

मनहरण ।

ताही भाँति विमल भये जे आप चिदानन्द,
तासको स्वयंभू नाम ऐसो दरसायो है ।
प्रापत भये अनन्त ज्ञानादि स्वभाव गुन,
आपही ते आपमाहिँ सुधा बरसायो है ॥
सोई सरवज्ञ तिहूँकालके समस्त वस्त,
हस्तरेखसे प्रत्यक्ष लखै सरसायो है ।

ताहीके पदारविंद देव इंद नागइंद
मानुषेंद बृंद वंदि पूज हरषायो है ॥ ५२ ॥

षट्कारकनिरूपण । दोहा ।

निजस्वरूप प्रापतिविषैं, पर सहाय नहिं कोय ।
षटप्रकार कारकनिमें, यह आतम थिर होय ॥ ५३ ॥

तासु नाम लक्षण सुगम, कहों जथारथ रूप ।
जैनवैनकी रीतिसों, ज्यों गुरुकथित अनूप ॥ ५४ ॥

करता करम करन तथा, **संप्रदान** उर आन ।
अपादान पुनि **अधिकरन,** ये षट्कारक मान ॥ ५५ ॥

गीतिका ।

स्वाधीन होइ करै सोई, **करतार** ताको जानिये ।
करतारकी करतूतिको, कहि **करम** कारक मानिये ॥
जाकरि करमको करत करता, **करन** ताको नाम है ।
वह करम जाको देत **संपरदान**सो सरनाम है ॥ ५६ ॥

पूरव अवस्था त्याग कर जो, होत नूतन काज है ।
सो जानिये पंचमों कारक **अपादान** समाज है ॥
जाके अधार बनै करम **अधिकरन** सोई ठीक है ।
यह नाम लच्छन हे विचच्छन छहोंकी तहकीक है ॥५७

भुजंगी ।

जहां औरकी मान नैमित्तता । करै है सुधी काजकी सिद्धता ।
तहां है असद्भूतुपाचारता । कोई द्रव्य काहूको ना धारता॥५८॥

मनहरण ।

जैसे कुंभकार **करतार** घट **कर्म** करै,
दंडचक्र आदिताके साधन **करन** है ।
जब घट कर्मको बनाय जलहेत देत,
तहाँ **संप्रदान** नाम कारक वरन है ॥
पूरव अवस्था मृतपिंडको विनाश भये,
घट निरमये **अपादानता** धरन है ।
भूमिके अधार घट कर्मको बनावत है,
तहां **अधिकर्न** होत संशय हरन है ॥ ५९ ॥

दोहा ।

यामें करतादिक पृथक्, यातें यह व्यवहार ।
सम्यकबुद्धि पसारकें, समझ लेहु श्रुतिद्वार ॥ ६० ॥

लक्ष्मीधरा ।

आप ही आपतें आपको साधता,
औरकी नाहिं, आधार आराधता ।
नाम निश्चै यही सत्य है सासता,
स्यादवादी विना कौनको भासता ? ॥ ६१ ॥

षट्पद ।

ज्यों माटी करतार, सहज सत्ता प्रमानमय ।
अपने घट परिनाम, करमको आप करत हय ॥
आपहि अपने कुंभ करनको, साधन हो है ।
आप होय घट कर्म, आपको देत सु सोहै ॥

आप ही अवस्था पूर्वकी, त्यागि होत घटरूप चट ।
अपने अधार करि आप ही, होत प्रगट घटरूप ठट ॥ ६२ ॥

सहज सकति स्वाधीन, सहित **करतार** जीव ध्रुव ।
करत शुद्ध सरवंग, आपको यही **करम** हुव ॥
निज परनति करि करत, आपको शुद्ध **करन** तित ।
सो गुन आपहि आप, देत यह **संप्रदान** हित ॥
तजि समल विमल आपहि बनत, **अपादान** तब उर धरन ।
करि निजाधार निज गुन अमल, तहां आप सो **अधिकरन**॥६३

चौबोला ।

जब संसार दशा तज चेतन, शुद्धपयोग स्वभाव गहै ।
तब आप हि षटकारकमय ह्वै, केवलपद परकाश लहै ॥
तहां स्वयंभू आप कहावत, सकल शक्ति निज व्यक्त अहै ।
चिद्विलास आनन्दकन्द पद, वंदि **वृन्द** दुखद्वंद दहै ॥६४॥

(१७)

द्रुमिला ।

तिस ही अमलान चिदातमके, निहचै करि वर्तत है जु यही ।
उतपाद भयो जो विशुद्ध दशा, तिसको न विनाश लहै कब ही॥
अरु भंग भये परसंगिक भावनिको उतपाद नहीं जो नहीं ।
पुनि है तिनके ध्रुव वै उतपाद, सदीव सुभाविकमांहिं सही ६५

दोहा ।

शुद्धुपयोग अराधिके, सिद्ध भये सरवंग ।
जे अनन्त ज्ञानादिगुन, तिनको कबहुँ न भंग ॥ ६६ ॥

अरु अनादिके करममल, तिनको भयो विनाश ।
सो फिर कबहुं न ऊपजैं, जहां शुद्ध परकाश ॥ ६७ ॥
पुनि ताही चिद्रूपके, वर्तत है यह धर्म ।
उपजन विनशन ध्रुव रहन, साहजीक पद पर्म ॥ ६८ ॥
द्रव्यदृष्टिकर ध्रौव्य है, उपजत विनशत पर्ज ।
षट्गुनहानरु वृद्धि करि, वरनत श्रुति भ्रम वर्ज ॥ ६९ ॥

(१८)

मनहरण ।

जेते हैं पदारथके जात विद्यमान तेते,
उतपाद व्यय भाव धरैं सदाकाल है ।
अर्थ परजायमें कि विंजन परजमाहिं,
अथवा विभाव कै स्वभाव पर्जपाल है ॥
याहीके अधार निराधार निज सत्ताधार,
निजाधार निराबाध द्रव्य गुनमाल है ।
कुंदकुंद इंदुके वचन अमी बूंद पियो,
जाको इंद-चंद-वृंद वंदत त्रिकाल है ॥ ७० ॥

किरीट ।

जो जगमें सब वस्तु विराजत, सो उतपादरु व्यै ध्रुव धारक ।
हैं परजाय सुभावमई कि विभाव कि अर्थ कि विंजन कारक ॥
है इनहीकरकें तिनकी, तिहुँकाल विषैं सदभाव उदारक ।
या विन द्रव्य सधै न किसी विधि, यों श्रुतिसिंधु मथी गनधारक ॥

मत्तगयन्द ।

कुंडलरूप भयो जब कंचन, कंकनता तब ही तज दीनों ।
ध्रौव्य दुहूमहँ आपहि है, गुन गौरव पीत सचिक्कन लीनों ॥
त्यों सब द्रव्य सदा प्रनवै, परजायविषैं गुन संग धरीनो ।
तीन विहीन नहीं कोउ वस्तु, यही उनको सद्भाव प्रवीनो ७२

मनहरण ।

धरम अधरम अकाश काल चारों द्रव्य,
सहज सुभाव परजायमाहिं रहै हैं ।
षटगुनी हानि वृद्धि करें समै समै माहिं,
अगुरुलघुगुनके द्वार ऐसे कहै हैं ।
गतिथिति अवकाश वर्तना गुन निवास,
चारोंमें यथोचित स्वसत्ताही को गहै हैं ।
जीव पुद्गलमें बिराजैं दोऊ परजाय,
विभाव तथा सुभाव जब जैसो लहै हैं ॥ ७३ ॥

दोहा ।

ज्यों मानुष तन त्यागिकै, उपजत सुरपुर जीव ।
दुहूँ दशामें आप ध्रुव, इमि तिहु सधत सदीव ॥ ७४ ॥
अथवा सिद्धदशाविषैं, ऐसे साधी साध ।
समल दशा तजि अमल हुव, वह ध्रुव जीव अबाध ॥ ७५ ॥
अथवा ज्ञानादर्शमें, दरसि रहै सब ज्ञेय ।
ज्ञेयाकार सुज्ञान तहँ, होत प्रतच्छ प्रमेय ॥ ७६ ॥

तिन ज्ञेयनकी त्रिविध गति, जिह जिह भाँति सुहोत ।
तिहि २ भाँति सुज्ञान वह, प्रनवत सहज उदोत ॥ ७७ ॥
याही भांति प्ररूपना, सिद्ध दशाके माँहि ।
उतपतव्ययध्रुवकी सधत, अनेकांतकी छाँह ॥ ७८ ॥
षटगुनि हानिरु वृद्धिकी, जा विधि उठत तरंग ।
सहज सुभाविक भावमें, सोऊ सधत अभंग ॥ ७९ ॥
उपजन विनशन ध्रौव्यके, विना द्रव्य नहिं होय ।
साधी गुरु सिद्धान्तमें, बाधी तहाँ न कोय ॥ ८० ॥

प्रश्न— शिखरिणी

कहो उत्पादादी त्रिविधिकर अस्तित्व तुमने ।
सुनी मैंने नीके उठत तब शंका मुझ मने ॥
त्रिधा काहे भाषो, ध्रुवहि करिके क्यों नहिं कहो ।
कहा यातें नाहीं सधत? सब वर्स्तें मुनि महो ॥ ८१ ॥

उत्तर— अनङ्गशेखर । (दंडक ३२ वर्ण)

पदार्थको जु ध्रौव्य रूप एक पच्छ मानिये,
तु तासुमें प्रतच्छ दोष लच्छ लच्छ जानिये ।
कुटस्थ रूप राजतौ प्रवृत्त त्याजि भाजतौ,
विराजतौ सदैव एक रूप ही बखानिये ॥
सु तौ नहीं विलोकिये विलोकिये त्रिधातमीक,
एक वस्तुकी दशा अनेक होत मानिये ।
सुवर्ण कुंडलादि होत दूधतैं घृतादि जोत,
मृत्तिका घटादिको तथैव सो प्रमानिये ॥ ८२ ॥

दोहा ।

दरवमाहिं दो शक्ति हैं, भाषी गुन परजाय ।
इन विन कबहुँ न सधि सकत, कीजे कोटि उपाय ॥८३॥
नित्य तदातमरूपमय, ताको गुन है नाम ।
जो क्रमकरि वरतै दशा, सो परजाय ललाम ॥ ८४ ॥
कहीं कहीं है द्रव्यकी, दोइभाँति परजाय ।
नित्यभूत तद्रूप इक, दुतिय अनित्य बताय ॥ ८५ ॥
नित्यभूतको गुन कहैं, दुतिय अनित्य विभेद ।
ताहि कही परजाय गुरु. यह मत प्रबल अछेद ॥ ८६ ॥
तिन परजायनकरि दरव, उपजत विनशत मान ।
ध्रौव्यरूप निजगुणसहित, दुहूं दशामें जान ॥ ८७ ॥
याही कर सद्भाव तसु, यह है सहज स्वभाव ।
यहां तर्क लागै नहीं, वृथा न गाल बजाव ॥ ८८ ॥

उक्तं च देवागमे—चोपाई ।

श्रीगुरु त्रिविधि तत्त्वको साधत । प्रगट दिखावत हैं निरवाधत ॥
घट परजाय धरै जो सोना । ताहि नाशि करि मुकुट सु होना ॥८९
तहां कुंभ सो जो रुचि रेखी । ताके होत विषाद विशेखी ॥
मौलि बनेतें जाके प्रीती । ताके हरष होत निरनीती ॥ ९० ॥
जाके सोनाहीसों काजा । सो दुहुमें मध्यस्थ विराजा ॥
तब कहु दरव त्रिविधि नहिं कैसे ? प्रगट विलोक हेतु जुत ऐसे९१
गोरस एक त्रिविधि परनवै । दूध दधी घृत जग वरनवै ॥
प्रनवन सकति नहीं तामाहिं । तब किहि भांति त्रिविधि हो जाहिं

देखो! प्रथम दूध रस रहा। दधि होते गुन औरै गहा।
घृत होते फिर औरहि भयो। स्वाद भेद गुन औरहि लयो॥९३॥
दूधव्रती दधि घृतको खाता। दधिव्रती घृत दूध लहाता॥
घृतव्रतधारी पय दधि गहै। पृथक तत्त्व तब क्यों नहिं अहै॥९४॥
एकै रूप जु गोरस होतो। तीन दशा तब किमि उद्दोतो?॥
तातैं तत्त्व त्रिधातम सही। न्यायसिंधु मथि श्रीगुरु कही॥९५॥

(१९)

मत्तगयन्द।

जो चहु घातिय कर्म विनाशि. अतिंद्रियरूप भयो अमलाना।
ताहि अनन्त जगे वर बीजरु, तेज अनन्त अपार महाना॥
सो वह आपहि ज्ञान सुखादि, सरूपमयी प्रनयौ भगवाना।
जासु विनाश नहीं कबहीं, गुन वृंद चिदानँदकंद प्रधाना॥९६॥

(२०)

केवलज्ञानघनी भगवानकी, रीति प्रधान अलौकिक गाई।
देह धरें तउ देहज दुःख, सुखादि तिन्हें नहिं होत कदाई॥
जातैं अतिंद्रिय रूप भये सुख, छायक वृंद सुभायक पाई।
तातैं तिन्हें न विकार कछू, अविकार अनन्तप्रकार बताई॥९७॥

दोहा।

सकल घात संघात हत, प्रगट्यो बीज अनन्त।
परम अतिंद्रिय सुखमयी, जाको कबहुँ न अन्त॥ ९८॥
ताको जे मतिमंद शठ, भाषैं कवलाहार।
धिग है तिनकी समुझिको, बार बार धिक्कार॥ ९९॥

गुनथानक छट्टम विषैं, होत अहार विहार ।
ताके ऊपर ध्यानगत, तहां न भुक्ति लगार ॥ १०० ॥
जे तेरम गुनथानमें, अचल चहूँ अरि जार ।
छायकलब्धिस्वभाव जहँ, तहँ किमि कवलाहार? ॥१०१॥
क्षुधा त्रषा बाधा करै, इन्द्री पीड़ैं प्रान ।
यह तो गति संसारमें, जगजीवनकी जान ॥ १०२ ॥
जहां अतिंद्रिय सुखसहित, चिदानन्द चिद्रूप ।
तहां कहां बाधा जहां, प्रगटी शकति अनूप ॥ १०३ ॥
मोह करम विन वेदनी, निरविष विषधर जेम ।
जरी जेवरी बलरहित, अबल अघाती तेम ॥ १०४ ॥
सकत अनंतानंत जस, प्रगट भयो निरबाध ।
तँह चेतन तनसहितकहँ, लगत न तनिक उपाध ॥१०५॥
निजानन्द रसपान तहँ, चिदानन्द कहँ होत ।
नोतनकरमसुवरगना, तिनकरि काय उदोत ॥ १०६ ॥
कर्मवरगना प्रति समय, पूर्वबंध संजोग ।
आय लगहिं पुनि झरपरहिं, टिकहिं न विन उपयोग१०७
निविड़ मोहनी विघन अरु, ज्ञान दर्शनावर्न ।
इनहिं नाशि निर्मल भये, अमल अचल पद धर्न ॥१०८
ते सांचे सर्वज्ञ हैं, तेई आप्त प्रधान ।
तिनके वचन प्रमान हैं, भवि-उर-भ्रम-तम भान ॥१०९॥

(२१)

षट्पद ।

ज्ञानरूप परिनये, आपु जे केवलज्ञानी ।
तिनके सकलप्रतच्छ, द्रव्य गुन-परज-प्रमानी ॥
सो नहिं जानहिं ताहि, अवग्रह आदि क्रियाकर ।
जातें यह छदमस्थ, ज्ञानकी रीति प्रगट तर ॥
निहचै सो श्रीभगवानके, सकल आवरन नाश हुव ।
सर्वावभास निज ज्ञानमें, लोकालोक प्रतच्छ ध्रुव ॥ ११० ॥

(२२)

षट्पद ।

इस भगवान महान, केवलज्ञान धनीकहँ ।
रह्यो न कछू परोक्ष, वस्तुके जानपनेमहँ ॥
जातें इन्द्रियरहित, अतीन्द्रियरूप विराजै ।
अरु सरवंग समस्त, अच्छके गुन छबि छाजै ॥
स्वयमेव हि ज्ञान सुभावकी, प्रापति है जिनके विमल ।
तिनको प्रतच्छ तिहुँ लोकके, वस्तुवृन्द झलकहिँ सकल १११

(२३)

मनहरण ।

ज्ञान गुनके प्रमान आतमा विराजमान,
जैसे हेम गुन पीत गौरवादिको धरै ।
सोई ज्ञानगुन ज्ञेयके प्रमान भाषै जथा,
अग्नि गुन उष्ण जितौ ईंधन तितौ जरै ॥

ज्ञेयको प्रमान वृंद, लोक औ अलोक सर्व,
तासुको विलोकत प्रतच्छरेखा ज्यों करै ।
ताहीतें सरवगति ज्ञानको सुसिद्ध करी,
स्वामीके वचन अनेकान्त रससों भरै ॥ ११२ ॥

(२४–२५)

ज्ञान गुनके प्रमान आतमा न मानत हैं,
ऐसे जो अजान इस लोकमें कुमती हैं ।
ताके मतमाहिं गुन ज्ञानतें अधिक हीन,
होत ध्रुवरूप वह आतमाकी गती है ॥
जे तो ज्ञानहीन ते तो जड़के समान भयो,
अचेतन तामें कहां ज्ञायक-शकती है ।
अधिक बखाने तो प्रमाने कैसे ज्ञान विना,
ऐसे परतच्छ स्वामी दोनों पच्छ हती हैं ॥११३॥

दोहा ।

जथा अगनि गुन उष्णतें, हीन अधिक नहिं होत ।
तथा आतमा ज्ञान गुन, सहित बराबर जोत ॥ ११४ ॥
अन्वय अरु व्यतिरेकता, ज्ञान आतमामाहिं ।
विना ज्ञान आतम नहीं, आतम विनु सो नाहिं ॥११५॥
जहां जहां है आतमा, तहां तहां है ज्ञान ।
जहां जहां है ज्ञान गुन, तहां तहां जिय मान ॥ ११६ ॥
तातें हीनाधिक नहीं, ज्ञान सुगुनतें जीव ।
हीनाधिकके मानतें, बाधा लगत सदीव ॥ ११७ ॥

कछु प्रदेशपै ज्ञान है, कछु प्रदेशपै नाहिं ।
यों मानत जड़ चेतना, दोनों सम है जाहिं ॥ ११८ ॥
तब किमि शुद्ध समाधिमें, निरविकल्प थिर होय ।
द्विधा दशा किमि अनुभवै, किहि विधि शिवसुख होय ११९
तातें दृष्टि प्रमानतें; बाधित है यह पच्छ ।
साधित है निरबाध ध्रुव, जीव ज्ञान यह स्वच्छ ॥१२०॥

(२६)

गीतिका ।

सर्वगत भगवानको, इस हेतुसों गुरु कहत हैं ।
　तास ज्ञान प्रकाशमें, सब जगत दरसत रहत हैं ॥
गुन ज्ञानमय है रूप जिनका, ज्ञेय ज्ञानविषैं मथा ।
　तासतें सर्वज्ञ सबव्यापक, जथारथ यों कथा ॥१२१॥

पट्पद ।

शुचि दरपनमें जथा, प्रगट घट पट प्रतिभासत ।
मुकुर जात नहिं तहां, तौन नहिं मुकुर अवासत ॥
तथा शुद्ध परकाश, ज्ञान सब ज्ञेयमाहिं गत ।
ज्ञेय तहां थित करहिं, यहू उपचार मानियत ॥
वह ज्ञान धरम है जीवको, धरमी धरम सु एक अत ।
या नयतें श्री सर्वज्ञको, कहैं जथारथ सर्वगत ॥ १२२ ॥

दोहा ।

एक ब्रह्म सब जगतमें, व्यापि रह्यौ सरवंग ।
अपनेही परदेशकरि, नानारंग उमंग ॥ १२३ ॥

ऐसी जिनके कुमतिकी, उपज रही है पच्छ ।
तिनको मत शतखंडकरि, दूषत हैं परतच्छ ॥ १२४ ॥
निज परदेशनिकरि जबै, जगमें व्यापौ आप ।
तब वह अमल समल भयौ, यह तो अमिल मिलाप ॥१२५॥
कछुक अमल कछु समल है, तौ भी बनै न बात ॥
एक वस्तुमें दो दशा, क्यों करि चित्त समात ॥ १२६ ॥
तातें ज्ञान प्रकाशमें, ज्ञेय सकल झलकंत ॥
सो निजज्ञानसुभावमय, आप प्रगट भगवंत ॥ १२७ ॥
यातें श्रीसरवज्ञको, कह्यो सर्वगत नाम ।
अन्तरछेदी ज्ञानमय, जगव्यापक जगधाम ॥ १२८ ॥
यातें जो विपरीत मत, ते सब सकल असिद्ध ।
स्यादवादतें सर्वगत, श्रीअरहंत सु सिद्ध ॥ १२९ ॥

(२७)

मनहर ।

जोई ज्ञान गुन सोई आतमा वखाने जातें,
दोऊमें कथंचित न भेद ठहरात है ।
आतमाविना न और द्रव्यमाहिं ज्ञान लसै,
ज्ञान गुन जीवमें ही दीखे जहरात है ॥
तथा जैसे ज्ञान गुन जीवमें विराजै तैसे,
और हू अनन्त गुन तामें गहरात है ।
गुनको समूह दव्व अपेक्षासों सिद्ध सव्व,
ऐसो स्यादवादको पताका फहरात है ॥ १३० ॥

द्रुमिला ।

गुणज्ञानहिंको जदि जीव कहैं, तदि और अनन्त जिते गुन हैं ।
तिनको तब कौन अधार बने, निरधारविना कहु को सुन है?॥
गुनमाहिं नहीं गुन और बसैं, श्रुति साधत श्रीजिनकी धुन है ।
तिसतें गुन पर्ज अनंतमयी, चिनमूरति द्रव्य सु आपुन है ॥

(२८)

षट्पद ।

ज्ञानी अपने ज्ञानभाव,—हीमाहिं विराजै ।
ज्ञेयरूप सब वस्तु, आपने थलमें छाजै ॥
मिलिकर बरतें नाहिं, परस्पर ज्ञेयरु ज्ञानी ।
ऐसी ही मर्याद, वस्तुकी बनी प्रमानी ॥
जिमि रूपीदरबनि को प्रगट, देखत नयन प्रमानकर ।
तिमि तहां जथारथ जानिके, **वृन्दावन** परतीति धर १३२

(२९)

मनहर ।

ज्ञानी ना प्रदेशतें प्रवेश करै ज्ञेयमाहिं,
तथा व्यवहारसे प्रवेश हू सो करै है ।
अच्छातीत ज्ञानतें समस्त वस्तु देखे जानें,
पाथरकी रेख ज्यों न संग परिहरै है ॥
जैसे नैन रूपक पदारथ विलोकै **वृन्द**,
तैसे शुद्ध ज्ञानसों अमल छटा भरै है ।

मानों सर्व ज्ञेयको उखारिके निगलि जात,
शक्त व्यक्त तासको विचित्र ऐसो धरै है॥१३३॥

(३०)

जैसे इस लोकमें महान इन्द्रनील रत्न,
दूधमाहिं डारै तब ऐसो विरतंत है ।
आपनी आभासतें सफेदी भेद दूधकी सो,
नीलवर्न दूधको करत दरसंत है ॥
ताही भांति केवलीके ज्ञानकी शकति वृन्द,
ज्ञेयनको ज्ञानाकार करत लसंत है ।
निहचै निहारें दोऊ आपसमें न्यारे तौऊ,
व्याप्य अरु व्यापकको यही विरतंत है ॥१३४॥

(३१)

षट्पद ।

जो सब वस्तु न लसें, ज्ञान केवलमहँ आनी ।
तो तब कैसे होय, सर्वगत केवलज्ञानी ॥
जो श्रीकेवलज्ञान, सर्वगत पदवी पायो ।
तो किमि वस्तु न बसहिं, तहां सब यों दरसायो ॥
उपचार द्वारतें ज्ञान जिमि, ज्ञेयमाहिं प्रापति कही ।
ताही प्रकारतें ज्ञानमें, वस्तु वृन्द वासा लही ॥ १३५ ॥

(३२)

मनहरण ।

केवली जिनेश परवस्तुको न गहै तजै,
तथा पररूप न प्रनवै तिहूँ कालमें ।

जातें ताकी ज्ञान जोति जगी है अकंपरूप,
छायक स्वभावसुख वेवै सर्व हालमें ॥
सोई सर्व वस्तुको विलोकै जाने सरवंग,
रंच हू न बाकी रहै ज्ञानके उजालमें ।
आरसीकी इच्छा विना जैसे घटपटादिक,
होत प्रतिबिंबित त्यों ज्ञानी गुनमालमें ॥१३६॥

दोहा ।

राग उदयतें संगरह, दोष भावतें त्याग ।
मोहउदय पर—परिनमन, ऐसे तीन विभाग ॥ १३७ ॥
गहन—तजन—परपरिनमन, इनहीतें नित होत ।
तास नाशकरिके भयो, केवल जोत उदोत ॥ १३८ ॥
जिनकी ज्ञानप्रभा अचल, यथा महामनि-जोत ।
प्रथमहिं जो सब लखि लियो, सो न अन्यथा होत १३९
जथा आरसी स्वच्छके, इच्छाको नहिं लेश ।
लसत तहां घटपट प्रगट, यही सुभाव विशेष ॥ १४० ॥
तैसे श्रीसरवज्ञके, इच्छाको नहिं अंस ।
निरइच्छा जानत सकल, शुद्धचिदातम हंस ॥ १४१ ॥
ऐसे श्रीसर्वज्ञ हैं, ज्ञान भान अमलान ।
वृंदावन तिनको नमत, सदा जोरि जुगपान ॥ १४२ ॥

(३३)

मत्तगयन्द ।

जो भवि भावमई श्रुतितें, निज आतमरूप लखै सरवंगा ।
ज्ञायकभावमई वह आप, निजौ-परको पहिचानत चंगा ॥
सो श्रुतिकेवली नाम कहावत, जानत वस्तु जथावत अंगा ।
लोकप्रदीप रिषीसुरने, इहिभांति भनी भ्रमभानि प्रसंगा १४३

मनहरण ।

निरदोष गुनके निधान निरावर्नज्ञान,
ऐसे भगवान ताकी वानी सोई वेद है ।
ताके अनुसार जिन जान्यो निजआतमाको,
सहितविशेष अनुभवत अखेद है ॥
सोई श्रुतिकेवली कहावै जिन आगममें,
आपापर जाने भले भरम उछेद है ।
केवली प्रभूके परतच्छ इनके परोच्छ,
ज्ञायक शकतिमाहिं इतनो ही भेद है ॥ १४४॥
केवलीके आवरन नाशतें प्रतच्छ ज्ञान,
वेदै एकै काल सुखसंपत अनंत है ॥
इनके करम आवरनतें करम लियें,
जेतो जानपनो तेतो वेदै सुखसंत है ॥
कोऊ भानु उदै देखै सकल पदारथको,
कोऊ दीखे दीपद्वार थोरी वस्तु तंत है ।

जानत जथारथ पदारथको दोऊ वृंद,
　　प्रतच्छ परोच्छहीको भेद वरतंत है ॥ १४५ ॥
जैसे मेघावर्नतें बखाने भानुविभाभेद,
　　जोतिमें विभेद माने प्रगट लवेद है ।
एक ज्ञानधारामें नियारा पंचभेद तैसे,
　　जानत क्रियामें तहाँ भेदको निषेद है ॥
केवलीके आवरन नाशतें प्रतच्छ ज्ञान,
　　इनके परोच्छ श्रुतिद्वारतें सुवेद है ॥
सांचे सरधानी दोऊ राचे रामरंगमाहिं,
　　कोऊ परतच्छ कोऊ परोच्छ अछेद है ॥१४६॥

तोटक।

इहि भांति जिनागममाहिं कही ।
　　श्रुतिकेवलिलच्छन दच्छ गही ॥
निज आतमको दरसै परसै ।
　　अनुभौ रसरंग तहां बरसै ॥ १४७ ॥

दोहा।

शब्दब्रह्मकरि जिन लख्यो, ज्ञानब्रह्म निजरूप ।
ताहीको श्रुतिकेवली, भाषतु हैं जिनभूप ॥ १४८ ॥

(३४)

मत्तगयन्द ।

श्रीसरवज्ञहृदम्बुधितें, उपजी धुनि जो शुचि शारद गंगा ।
सो वह पुग्गलद्रव्यमई, भइ अंग उपंग अभंग तरंगा ॥

ताकहँ जो पहिचानत है, सोइ ज्ञान कहावत भावश्रुतंगा ।
सूत्रहुको गुरुज्ञान कहैं, सो विचार यहां उपचार प्रसंगा १४९

(३५)

षट्पद ।

जो जाने सो ज्ञान, जुदो कछु वस्तु न जानो ।
आतम आपहि ज्ञान, धर्मकरि ज्ञायक मानो ॥
ज्ञानरूप परिनवै, स्वयं यह आतमरामा ।
सकल वस्तु तसु बोधमाहिं, निवसैं करि धामा ॥
जद्यपि संज्ञा संख्यादितें, भेद प्रयोजनवश कहा ।
तद्यपि प्रदेशतें भेद नहिं, एक पिंड चेतन महा ॥१५०॥

मनहरण ।

जैसे घसिहारो घास काटै लोह दांतलेसों,
तहां करतार क्रिया साधन नियारा है ।
तैसे आतमाविषैं न भेद है त्रिभेदरूप,
यहां तो प्रदेशतें अभेद निराधारा है ॥
संज्ञा संख्या लच्छन प्रयोजनतें वस्तुको,
अनन्तधर्मरूप सिद्ध साधन उचारा है ॥
गुणी गुणमाहिं जो सरवथा विभेद मानें,
तहां तो प्रतच्छ दोष लागत अपारा है ॥१५१॥

मत्तगयन्द ।

आतमको गुन ज्ञानतें भिन्न, बखानत हैं केई मूढ अभागे ।
दो विधि बात कहो तिनसों, वह ज्ञान विराजत है किहि जागे ॥

जो जड़में गुन ज्ञान बसै, तब तो जड़ चेतनता—पद पागे।
जीवहिंमें जो बसै गुन ज्ञान, तो क्यों तुम गाल बजावन लागे॥

मनहरण।

जैसे आग दाहक—क्रियाको करतार ताको,
उष्णगुन दाहकक्रियाको सिद्ध करै है।
तैसे आतमाकी क्रिया ज्ञायकसुभाव तासु,
ज्ञानगुन साधन प्रधानता आचरै है॥
विवहार दिष्टतें विशिष्ट है विभेद वृन्द,
निहचै सुदिष्टसों अभेद सुधा झरै है।
आप चिन्मूरत अखंड द्रव्यदृष्टि ताके,
सत्ता गुन भेदतें अनंत धारा धरै है॥१५३॥

दोहा।

निरविकल्प आतम दरब, द्रव्यदृष्टिके द्वार।
जब [illegible] [illegible] विचारिये, तब बहु भेद पसार॥१५४॥
जेते वचनविकल्प हैं, ते नयके भेद।
सहित अपेच्छा [illegible]सिब, रहित अपेच्छ निषेद॥१५५॥
जहां सरव[illegible]च्छकरि, गहत वचनकी टेक।
त[illegible]त मिथ्यात मत, सधत न वस्तु विवेक॥१५६॥
[illegible] दोनों नयनिको, दोनों नयनसमान।
जथाथान सरधानकरि, **वृंदावन** सुख मान॥ १५७॥
जहां अपेच्छा जासुकी, तहां ताहि करि मुख्य।
करो सत्य सरधान दिढ़, स्यादवाद रस चुख्य॥१५८॥

है सामान्यविशेषमय, वस्तु सकल तिहि काल ।
सो इकंतसों सधत नहिं, दूषन लगत विशाल ॥ १५९ ॥
तातें यह चिद्रूपको, प्रनवन है गुन ज्ञान ।
ज्ञानरूप वह आप है, चिदानंद भगवान ॥ १६० ॥

(३६)

षट्पद ।

पूरवकथित प्रमान, जीव ही ज्ञान सिद्ध हुव ।
ज्ञेय द्रव्य कहि त्रिविधि, विविध विधि भेद तासु ध्रुव॥
चिदानंदमें द्रव्य, ज्ञेय दोनों पद सोहै ।
अन्य पंच जड़वर्ग, ज्ञेय पदवी तिनको है ॥
यह आतम जानत सुपरको, ज्ञान वृन्द परकाश धर ।
परिनामरूप सनबंध है, ज्ञाता ज्ञेय अनादिकर ॥१६१॥
जदपि होय नट निपुन, तदपि निजकंध चढ़ै किमि
तिमि चिनमूरति ज्ञेय, लखु नहिं लखत आप इमि ॥
यों संशय जो करै, तासु उत्तर दीजे ।
सुपर प्रकाशकशक्ति, जीवमें सहज लखीजे ॥
जिमि दीप प्रकाशत सुघटपट, तथा आप दुति जगमगत ।
तिमि चिदानंदगुनवृंदमें, स्वपरप्रकाशक पद पगत॥१६२॥

चौपाई ।

ज्ञेय त्रिधातमको यह अर्थ । भाषा श्रीगुरुदेव समर्थ ।
भूतअनागत वरतत जेह । परजय भेद अनंते तेह ॥१६३॥

अथवा उतपतिव्ययध्रुवरूप । तथा द्रव्यगुनपरज प्ररूप ।
सुपर ज्ञेयके जे ते भेद । सो सब जानत ज्ञान अखेद १६४॥
ज्ञानरूप अरु ज्ञेयस्वरूप । द्रव्यरूप यह है चिद्रूप ।
और पंच जड़वर्जित ज्ञान । सदा ज्ञेयपद धरै निदान१६५॥
आतमज्ञान जोतिमय स्वच्छ । स्वपर ज्ञेय तहँ लसत प्रतच्छ ।
वंदों कुंदकुंद मुनिराय । जिन यह सुगम सुमग दरसाय १६६

(३७)

मनहरण ।

जेते परजाय षट्द्रव्यनके होय गये,
अथवा भविष्यत जे सत्तामें विराजें हैं ।
तेते सब भिन्न भिन्न सकल विशेषजुत,
शुद्ध ज्ञान भूमिकामें ऐसे छवि छाजें हैं ॥
जैसे ततकाल वर्त्तमानको विलोकै ज्ञान,
तैसे भगवान अविलोकैं महाराजैं हैं ।
भूतभावी वस्तु चित्रपटमें निहारैं जैसे,
गहै ज्ञान ताको तैसे तहां भ्रम भाजैं हैं ॥१६७॥

दोहा ।

वर्तमानके ज्ञेयको, जो जानत है ज्ञान ।
तामें तो शंका नहीं, देखत प्रगट प्रमान ॥ १६८ ॥
भूत भविष्यत पर्ज तो, है ही नाहीं मित्त !
तब ताको कैसे लखै, यह भ्रम उपजत चित्त ॥ १६९ ॥

बाल अवस्थाकी कथा, जब उर करिये याद ।
तब प्रतच्छवत होत सब, यामें नाहिं विवाद ॥ १७० ॥
अथवा भावी वस्तु जे, वेदविदित सब ठौर ।
तिनहिं विचारत ज्ञान तहँ, होत तदाकृति दौर ॥१७१॥
बाहूबलि भरतादि जे, ऽतीत पुरुष परधान ।
अथवा श्रेणिक आदि जे, होनहार भगवान ॥ १७२ ॥
तिनको चित्र विलोकतैं, ऐसो उपजत ज्ञान ।
जैसे ज्ञेय प्रतच्छको, जानत ज्ञान महान ॥ १७३ ॥
छदमस्थनिके ज्ञानकी, जहँ ऐसी गति होय ।
जानहिं भूत भविष्यको, वर्तमानवत सोय ॥ १७४ ॥
तब जिनके आवरनको, भयौ सरवथा नाश ।
प्रगट्यो ज्ञान अनंतगत, सहजशुद्ध परकाश ॥ १७५ ॥
तिनके भूतभविष्य जे, परजै भेद अनंत ।
छहों दरबके लखनमें, शंका कहा रहंत ॥ १७६ ॥
यह सुभाव है ज्ञानको, जब प्रनवत निजरूप ।
तब जानत जुगपत जगत, त्रिविधि त्रिकालिकभूप ॥१७७॥
ऐसे परम प्रकाशमहँ, शुद्ध बुद्ध जिमि अर्क ।
तास प्रगट जानन विषैं; कैसे उपजै तर्क ॥ १७८ ॥
अपने वस्तुस्वभावमें, राजै वस्तु समस्त ।
निज सुभावमें तर्क नहिं, यह मत सकल प्रशस्त ॥१७९॥

(३८)

दोहा ।

जे परजे उपजे नहीं, होय गये पुनि जेह ।
असद्भूत है नाम तसु, यों भगवान भनेह ॥ १८० ॥
ते सब केवलज्ञानमें, हैं प्रतच्छ गुनमाल ।
ज्यों चौवीसी थंभमें, लिखी त्रिकालिक हाल ॥ १८१ ॥

(३९)

द्रुमिला ।

जिस ज्ञानविषैं परतच्छ समान, भविष्यत भूत नही झलकै ।
परजाय छहों विधि द्रव्यनके, निहचै करके सब ही थलकै ॥
तिस ज्ञानकों कौन प्रधान कहै, भवि वृंद विचार करो भलकै ।
वह तो नहिं पूज पदस्थ लहै, न त्रिकालिकज्ञेय जहाँ ललकै ॥

(४०)

काव्य (मात्रा २६)।

जो इंद्रिनसों भये आप सनबन्ध पदारथ ।
तिनको ईहादिकन सहित, जो जानत सारथ ॥
सो जन वस्तु परोच्छ तथा, सूच्छिम नहिं जाने ।
मतिज्ञानीकी यही शकति, जिनदेव बखाने ॥ १८२ ॥

मनहरण ।

इंद्रिनके विषय जे विराजत हैं थूलरूप,
तिनसों मिलाप जब होय तब जाने हैं ।

अवग्रह ईहा औ अवाय धारणादि लिये,
क्रमसों विकल्पकरि ठीकता सो माने हैं ॥
भूतभावी परजै प्रमान औ अरूपीवस्तु,
इंद्रिनतें सर्व ये अगोचरप्रमाने हैं ।
जातें इन गच्छिनिको अच्छतें न ज्ञान होत,
ताहीसेती अच्छज्ञान तुच्छ ठहराने है ॥१८४॥

(४१)

अप्रदेशीकालानु प्रदेशी पंच अस्तिकाय,
मूरतीक पुग्गल अमूरतीक पाँच है ।
तिनके अनागत अतीत परजाय भेद,
नाना भेद लिये निज निज थल माच है ॥
सर्वको प्रतच्छ एक समैहीमें जाने स्वच्छ,
अतीन्द्रियज्ञान सोई महिमा अवाच है ।
बारबार बंदत पदारविंदताको वृंद,
जाको पद जानैतें न नाचै कर्मनाच है ॥१८५॥

सवैयाछन्द ।

इंद्रियजनित ज्ञानहीतें जे, मतवाले माने सरवज्ञ ।
सो तौ प्रगट विरोध बात है, पच्छ छांड़ि परखौ किन तज्ञ ॥
सूक्ष्मान्तरित दूरके द्रव्यनि,-सों न प्रतच्छ लखै अलपज्ञ ।
यातें निरावरन निरदूषित, छायक ही ज्ञानी सारज्ञ ॥१८६॥

(४२)

षट्पद ।

जो ज्ञाता परिनवै, ज्ञेयमें विकलप धारै ।
तिहिको छायकज्ञान, नाहिं यों जिन उच्चारै ॥
वह विकलपजुत वस्तु, वृंद अनुभव न करै है ।
मृगतृष्णा इव फिरत, नाहिं संतोष धरै है ॥
तातैं विकलपजुतज्ञानको, नहिं छायकपदवी परम ।
यह पराधीन इन्द्रियजनित, वह सुबोध आतमधरम १८७॥

(४३)

द्रुमिला ।

भगवंत भनी जगजंतुनिको, जब कर्मउदै इत आवत है ।
तब राग विरोध विमोहि दशाकरि, नूतनबंध बढ़ावत है ॥
दिढ़ आतम जोति जगै जिनको, तिनको रस दै खिर जावत है।
नहिं नूतन बंध बँधै तिनको, इमि श्रीगुरुवृंद बतावत है१८८॥

(४४)

मनहरण ।

तिन अरहंतनिके इच्छाविना क्रिया होत, कायजोग बैठन उठन डग भरनो । दिव्यध्वनि धारासों दुधारा धर्म भेद भनै, ताहीके अधारा भवपारावार तरनो ॥ मायाचार नारिनिमें नारिवेद–उदै जैसे, केवलीके तैसे औदयिकक्रिया वरनो । देखो ! मेघमाला नाद करत रसाला उठि, चलत विशाला तैसे तहाँ उर धरनो ॥ १८९ ॥

दोहा।

प्रश्नः—पूछत शिष्य विनीत इत, विन इच्छा भगवान।
दिच्छा शिच्छा देत किमि, उठत चलत थितिठान॥१९०

उत्तरः—सुविहायोगत कर्म है, चलन-फिरनको हेत।
सोई निज रस दै खिरत, उठत चलत थिति लेत॥१९१॥

विन इच्छा जिमि चलत हैं, मेघ पवनके जोग।
आरज श्रीअरहंत तिमि, विहरहिं कर्म-नियोग॥१९२॥

भाषा-प्रकृति उदोत लगु, वानी खिरत त्रिकाल।
स्वतः अनिच्छा रूपतैं, तहां अलौकिक चाल॥१९३॥

रसन दशन हालैं न कछु, लगत न ओठ लगार।
विकृति होत नहिं अंगको, महिमा अपरंपार॥१९४॥

अष्ट स्थानकतैं वरन[1], उपजत संजुतशोर।
जिनध्वनि वर्जित तासतैं, जथा मेघ घनघोर॥१९५॥

सो जब तहां पुनीत जन, पूछहिं सन्मुख आय।
दिव्यध्वनि तब खिरत है, निमित तासुको पाय॥१९६॥

निमित और नैमितकको, बन्यो बनाव अनाद।
सब मत मानत बात यह, यामें नाहिं विवाद॥१९७॥

चिंतामनि अरु कल्पतरु, ये जड़ प्रगट कहाहिं।
मनवांछित संकल्प किमि, सिद्धि करहिं पलमाहिं॥१९८

१ वर्ण—अक्षर।

पारस निज गुन देत नहिं, नहिं परऔगुन लेत।
किमि ताको परसत तुरत, लोह कनकछबि देत ॥१९९॥
इच्छारहित अनच्छरी, ऐसे जिनधुनि होय।
उठन चलन थितिकरनमें, यहां न संशय कोय ॥२००॥

(४९)

मनहरण।

पुण्यहीको फल है शरीर अरहंतनिको, फेरि तिन्हैं सोई कर्म उदै जब आवै है। तबै काय वैन जोग क्रियाको उदोत होत, जथा मेघ बोलै डोलै वारि वरसावै है॥ जातैं मोहआदिको सरवथा अभाव तहाँ, तातैं वह क्रिया वृंद छायकी कहावै है। पूर्वबंध खिरो जात नूतन न बंधे पात, छायकीको ऐसोई सुभेद वेद गावै है॥ २०१ ॥

चौपाई।

चार भांति करि बंध विभागा। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभागा।
जोगद्वारतैं प्रकृति प्रदेशा। थिति अनुभाग मोहकृत भेषा॥
जहां मूलतैं मोह विनाशै। तहँ किमि थिति अनुभाग प्रकाशै।
पूरवबंध उदै जो आवै। सो निज रस दैके खिरि जावै॥

दोहा।

भानु वसत आकाशमें, जलमें जलज वसंत।
किमि ताको अवलोकते, विकसित होत तुरंत ॥ २०४ ॥
अस्त गभस्त विलोकते, चकवा तिय तजि देत।
लखहु निमित नैमतिकको, प्रगंट अनाहत हेत ॥२०५॥

तैसे पुण्यनिधानके, प्रश्न होत परमान।
जिनधुनि खिरत अनच्छरी, इच्छारहित महान॥२०६॥
जैसे शयनदशाविषैं, कोउ करि उठत प्रलाप।
विनु इच्छा तसु वचन तहँ, खिरत आपतैं आप॥२०७
जब इच्छाजुतको वचन, खिरत अनिच्छा येम।
तब सो वचनखिरनविषैं, इच्छाको नहिं नेम॥२०८॥
चिंतामनि सुरवृच्छतैं, गुनित अनंतानंत।
शक्ति सुखद जिनदेहमें, सहज सुभाव लसंत॥२०९॥
जैसी जिनकी भावना, तैसी तिनकों दीस।
धुनि धारासों विस्तरत, इन्द्र धरत सत शीस॥२१०॥
अब जिहिविधि वरनातमक, होत सुधारण धार।
ताको सुनि शरधा करो, ज्यों पावो भवपार॥२११॥
श्रीगनधर वर रिद्धिधर, सुनहिं सुधुनि अमलान।
तिनहूकी मतिमें सकल, बानी नाहिं समान॥२१२॥
जेतो मतिभाजन तितो, वयॅन[1] गही गनईश।
वीस अंक परमान श्रुति, रची ताहि नुतशीस॥२१३॥
ताहीके अनुसार पुनि, और सुगुरु निरग्रंथ।
रचना जिनसिद्धांतकी, रचहिं सुखद शिवपंथ॥२१४॥

चौपाई।

आतमराम शुद्ध उपयोगी। अमल अतिंद्री आनँदभोगी।
तिनकी क्रिया छायकी वरनी। वृंदावन बंदत भवतरनी॥

१ वचन।

(४६)

माधवी ।

जदि आतम आप सुभावहितैं, स्वयमेव शुभाशुभरूप न होई।
तदि तौ न चहै सब जीवनिके, जगजाल दशा चहिये नहिं कोई ॥
जब बंध नहीं तब भोग कहां, जो बँधै सोई भोगवै भोग तितोई ।
यह पच्छ प्रतच्छ प्रमानतैं साधते, खंडन सांख्यमतीनिकी होई॥

छन्दसवैया-(सांख्यमतीका लक्षण ।)

सांख्य कहै संसारविषैं थित, जीव शुभाशुभ करै न भाव ।
प्रकृति करै करमनिको ताकौ, फल भुगतै चिन्मूरति-राव ॥
तहां विरोध प्रगट प्रतिभासत, विना किये कैसे फल पाव ।
जातैं जो करता सो भुक्ता, यही राजमारगको न्याव ॥ २१७

(४७)

अशोकपुष्पमंजरी ।

वर्तमान कालके गुनौ समस्त पर्ज वा, भविष्यभूतकालके जिते अनंतनंत हैं । सव्व दव्वके सवंग जे विचित्रता तरंग अंतरंग चिन्ह भिन्न भिन्न सो दिपंत हैं ॥ एक ही समै सु एक बार ही लख्यौ तिन्हैं प्रतच्छ अंतरंग छेद स्वच्छता धरंत हैं। छायकीय ज्ञान है यही त्रिलोकवंद वृंद जो समौ विषम्यमें समान भासवंत है ॥ २१८ ॥

(समविपमकथन)-मनहरण ।

कोऊ द्रव्य काहूके समान न विराजत है, याहीतैं विषम

सो बखानै गुरु ग्रंथमें। मति श्रुति औधै मनपर्जके विषय तेऊ, विषम कहावत छयोपशम पंथमें ।। सर्व कर्म सर्वथा विनाशिके प्रतच्छ स्वच्छ, छायक ही ज्ञान सिद्ध भयौ श्रुति मंथमें । सोई सर्व दर्वको विलोकै एकै समैमाहिं, महिमा न जासकी समात ग्रंथकंथैमें ।। २१९ ।।

(४८)

मनहरण ।

तीनोंलोकमाहिं जे पदारथ विराजैं तिहूं,-कालके अनंतानंत जासुमें विभेद है । तिनको प्रतच्छ एक समैहीमें एकै बार, जो न जानि सकै स्वच्छ अंतर उछेद है ।। सो न एक दर्वहूको सर्व परजायजुत, जानिवेकी शक्ति धरै ऐसे भनै वेद है । तातैं ज्ञान छायककी शक्ति व्यक्त **वृंदावन**, सोई लखै आप-पर सर्वभेद छेद है ।। २२० ।।

(४९)

मत्तगयन्द ।

जो यह एक चिदातम द्रव्य, अनन्त धरै गुनपर्यय सारो ।
ताकहँ जो नहिं जानतु है, परतच्छपने सरवंग सुधारो ।।
सो तव क्यों करिके सब द्रव्य, अनंत अनंत दशाजुत न्यारो ।
एकहि कालमें जानि सकै यह, ज्ञानकी रीतिको क्यों न विचारो।।

मनहरण ।

घातिकर्म घातके प्रगट्यो ज्ञान छायक सो, दर्वदिष्टि

१ अवधिज्ञान । २ ग्रंथरूपी कंथामें-वस्त्रमें ।

देखते अभेद सरवंग है। ज्ञेयनिके जानिवेतैं सोई है अनंत रूप, ऐसे एक औ अनेक ज्ञानकी तरंग है॥ तातैं एक आतमाके जानेहीतैं **वृन्दावन**, सर्व दर्व जाने जात ऐसोई प्रसंग है। केवलीके ज्ञानकी अपेच्छातैं कथन यह, मथन करी है कुंदकुंदजी अभंग है॥ २२२॥

(५०)

अरिल्ल।

जो ज्ञाताको ज्ञान अनुक्रमको गही।
वस्तुनिको अवलंबत उपजत है सही।
सो नहिं नित्य न छायक नहिं सरवज्ञ है।
पराधीन तसु ज्ञान सो जन अलपज्ञ है॥२२३॥

(५१)

मनहरण।

तिहूंकालमाहिं नित विषम पदारथ जे, सर्व सर्वलोकमें विराजैं नाना रूप है। एकै बार जानै फेरि छांड़ैं नाहिं संग ताको, संगकी[1] सी रेखा तथा सदा संगभूप है॥ अमल अचल अविनाशी ज्ञानपरकाश, सहजसुभाविकसुधारसको कूप है। श्रीजिनिंददेवजूके ज्ञान गुन छायककी, अहो भविवृन्द यह महिमा अनूप है॥ २२४॥

कोऊ मूरतीक कोऊ मूरतिरहित द्रव्य, काहुके न काय

---

१ पत्थरकी रेखा।

कोऊ द्रव्य कायवंत है । कोऊ जड़रूप कोऊ चिदानंदभूप यातैं, सर्व दर्व सम नाहिं विषम भनंत है ॥ तिनके त्रिकालके अनंत गुनपरजाय, नित्यानित्यरूप जे विचित्रता धरंत है। सर्वको प्रतच्छ एक समैमें ही जानै ऐसे, ज्ञानगुन छायककी महिमा अनंत है ॥ २२५ ॥

(५२)

मनहरण ।

शुद्ध ज्ञानरूप सरवंग जिनभूप आप, सहज-सुभाव-सुखसिंधुमें मगन है । तिन्हैं परवस्तुके न जानिवेकी इच्छा होत, जातैं तहां मोहादि विभावकी भगन है ॥ तातैं पररूप न प्रनवै न गहन करै, पराधीन ज्ञानकी न कबहूं जगन है । ताहीतैं अबंध वह ज्ञान क्रिया सदाकाल, आतमप्रकाशहीमें जासकी लगन है ॥ २२६ ॥

दोहा ।

क्रिया दोइ विधि वरनई, प्रथम प्रज्ञप्ती जानि ।
ज्ञेयारथ परिवरतनी, दूजी क्रिया बखानि ॥ २२७ ॥
अमलज्ञानदरपनविषैं, ज्ञेय सकल झलकंत ।
प्रज्ञप्ती है नाम तसु, तहां न बंध लसंत ॥ २२८ ॥
ज्ञेयारथ परिवरतनी, रागादिकजुत होत ।
जैसो भावविकार तहँ, तैसो बंधउदोत ॥ २२९ ॥

पद्धतिका-पद्धड़ी। (अधिकारान्तमंगल।)

ज्ञानाधिकार यह मुकतिपंथ। गुरु कथी सारश्रुतिसिंधु मंथ॥
मुनि कुंदकुंदके जुगल पांय। वृन्दावन वन्दत शीस नाय॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दावनकृतभाषामें प्रथम ज्ञानाधिकार पूरा भयो।[1]

---

[1] (क प्रतिमें) "मिती कार्तिककृष्णा १४ चौदश संवत् १९०५ बुधवारे (ख प्रतिमें) संवत् १९०६ चैत्रशुक्ला पूर्णमास्याम् मन्दवासरे।" इस प्रकार लिखा है।

अथ द्वितीयसुखाधिकारः प्रारभ्यते ।

मंगलाचरण ।

चरनकमल कमला बसत, सारद सुमुखनिवास ।
देवदेव सो देव मो, कमला वागविलास ॥ १ ॥
श्रीसरवज्ञ प्रनाम करि, कुंदकुंद मुनि वंदि ।
वरनों सुखअधिकार अब, भवि उर-भरम निकंदि ॥ २ ॥

(१)

मनहरण ।

अर्थनिकेमाहिं[1] जो अतीन्द्रीज्ञान राजत है, सोई तो अमूरतीक अचल अमल है। बहुरि जो इंद्रियजनित ज्ञान उपजत, सोई मूरतीक नाम पावत समल है ॥ ताही भांति सुखहू अतीन्द्री है अमूरतीक, इंद्रीसुखमूरतीक सोऊ न विमल है। दोऊमें परम उतकृष्ट होय गहो ताहि, सोई ज्ञान सुख शिवरमाको कमल है ॥ ३ ॥

अतीन्द्रियज्ञान सुख आतमसुभाविक है, एक रस सासतो अखंड धार बहै है। शत्रुको विनाशिके उपज्यो है अबाध-रूप, सर्वथा निजातमीक-धर्मको गहै है ॥ इंद्रीज्ञानसुख पराधीन है विनाशिक है, तातैं याको हेय जानि ऐसो गुरु कहै है। ज्ञानसुखपिंड चिनमूरति है **वृंदावन,** धर्मीमें अनंत धर्म जुदे जुदे रहै है ॥ ४ ॥

---

१ पदार्थोंमें ।

(२)

जाकी ज्ञान प्रभामें अमूरतीक सर्व दर्व, तथा जे अतींद्री-गम्य अनू पुदगलके। तथा जे प्रछन्न द्रव्य क्षेत्र काल भाव चार, सहितविशेष वृंद निज निज थलके ॥ और निज आतमके सकल विभेद भाव, तथा परद्रव्यनिके जेते भेद ललके। ताही ज्ञानवंतको प्रतच्छ स्वच्छ ज्ञान जानो, जामें ये समस्त एक समैहीमें झलके ॥ ५ ॥

(३)

जीव है सुभावहीतैं स्वयंसिद्ध अमूरत, द्रव्यद्वार देखते न यामें कछु फेर है। सोई फेर निश्चैसों अनादि कर्मबंध जोग, मूरतीक दीखै जैसो देहको गहे रहै ॥ ताही मूरतीकतैं सुजोग मूर्त पदारथ, तिनको अवग्रहादिकतैं जानते रहै। अथवा छ्योपशममन्दता भयेतैं सोई, थूल मूरतीकहू न जानत किते रहै ॥ ६ ॥

दोहा।

देह धरेतैं आतमा, द्रव्येंद्रिनिके द्वार।
निकट थूल मूरत दरव; तिनको जाननिहार ॥ ७ ॥
अथवा छय उपशम घटैं, निपट निकट जे वस्त।
तिनहुँ न जानि सकै कभी, यह जगविदित समस्त ॥ ८ ॥
पंचिन्द्रिनिके विषयको, जानि अनुभवै सोय।
इंद्रियसुख सो जानियो, मूरतीकमें होय ॥ ९ ॥

यातैं ज्ञानौ सुख दोऊ, बसहिं सदा इक संग ।
मूरतिमाहीं मूरतिक, इतरमाहिं तदरंग ॥ १० ॥
फरस रूप रस गंध अरु, श्रवनिंद्रिनिके भोग ।
ज्ञानद्वारतैं जानिके, सुख अनुभव तपयोग ॥ ११ ॥
यातैं ज्ञानरु सौख्यको, अविनाभावी संग ।
चिद्विलासहीमें बसत, उपजहि संग उमंग ॥ १२ ॥
इंद्रियज्ञानरु सौख्य जिमि, मूरतीकमें जान ।
तथा अतिंद्रियज्ञान सुख, बसत अतिंद्रियथान ॥ १३ ॥
कहा कहों नहिं कहि सकों, वचनगम्य नहिं येह ।
अनुभव नयन उघारि घट, **वृंदावन** लखि लेह ॥१४॥

(जीवदशा ।) मनहरण ।

अनादितैं महामोह मदिराको पान किये, ठौर ठौर करत उराहनेको काम है । अज्ञान अँधारेमें सँभारे न शकति निज, इंद्रिनिके लारे किये देहहीमें धाम है ॥ लपटि झपटि गहै मूरतीक भोगनिको, शुद्धज्ञानदशासेती भई बुद्धि वाम है । ऐसी मूरतीक ज्ञान परोच्छकी लीला **वृंद**, भाषी **कुंदकुंद** गुरु तिनको प्रनाम है ॥ १५ ॥

(४)

षट्पद ।

फरस रूप रस गंध, शब्द ये पुग्गलीक हैं ।
पंचेंद्रिनिके जथाजोग ये, भोग ठीक हैं ॥

सब इंद्री निजभोगन, जुगपत गहन करैं हैं ।
छय उपशम क्रमसहित; भोग अनुभवत रहैं हैं ।
ज्यों काक लखत दो नयनतैं, एक पूतली फिरनिकर ।
जुगपत नव भेदि सलखि सकत, त्यों इंद्रिनिकी रीति तर ॥
जीव जीभके स्वादमाहिं, जिहिकाल पगै है ।
अन्येंद्रिनिके भोगमें न, तब भाव लगै है ॥
निज निज रस सब गहैं, जदपि यह सकति अच्छमहँ ।
तदपि न एकै काल, सकल रस अनुभवते तहँ ॥
रस वेदहिं क्रमहीसों सभी, छय उपशमकी सकति यहि ।
जातैं परोच्छ यह ज्ञान है, पराधीन मूरति सु गहि ॥१७॥

दोहा ।

यह परोच्छ ही ज्ञानतैं, इंद्रिनिको रस जान ।
चिदानंद सुख अनुभवहि, जेतो ज्ञान प्रमान ॥ १८ ॥
तातैं ज्ञानरु सुख दोउ, हैं परोच्छ परतंत ।
मूरतीक बाधासहित, यातैं हेय भनंत ॥ १९ ॥

(५)

छन्द सवैया ।

जे परदरवमई हैं इन्द्री, ते पुद्गलके बने बनाव ।
चिदानंद चिद्रूप भूपको, यामैं नाहीं कहूं सुभाव ॥
तिन करि जो जानत है आतम, सो किमि होय प्रतच्छ लखाव।
पराधीन तातैं परोच्छ यह, इन्द्रीजनित ज्ञान ठहराव॥२०॥

मत्तगयन्द ।

पुद्गलदर्वमई सब इंद्रिय, तासु सुभाव सदा जड़ जानो ।
आतमको तिहुंकालविषैं, नित चेतनवंत सुभाव प्रमानो ॥
तौ यह इंद्रियज्ञान कहो, किहि भांति प्रतच्छ कहाँ ठहरानो।
तातैं परोच्छ तथा परतंत्र, सु इंद्रियज्ञान भनौ भगवानो॥ २१ ॥

(६)

मनहरण ।

परके सहायतैं जो वस्तुमें उपजै ज्ञान, सोई है परोच्छ तासु भेद सुनो कानतैं । जथा उपदेश वा छयोपशम लाभ तथा, पूर्वके अभ्यास वा प्रकाशादिक भानतैं ॥ और जो अकेले निज ज्ञानहीतैं जानैं जीव, सोइ है प्रतच्छ ज्ञान साधित प्रमानतैं । जातैं यह परकी सहाय विन होत वृंद, अतिंद्रिय आनंदको कंद अमलानतैं ॥ २२ ॥

(७)

मनहरण ।

ऐसो ज्ञानहीको 'सुख' नाम जिनराज कह्यो, जौन ज्ञान आपने सुभावहीसों जगा है । निरावर्नताई सरवंग जामें आई औ जु, अनंते पदारथमें फैलि जगमगा है ॥ विमल सरूप है अभंग सरवंग जाको, जामें अवग्रहादि क्रियाको क्रम भगा है । सोई है प्रतच्छ ज्ञान अतिंद्री अनाकुलित, याहीतैं अतिंद्रीसुख याको नाम पगा है ॥ २३ ॥

(८)

मत्तगयन्द ।

केवलनाम जो ज्ञान कहावत, है सुखरूप निराकुल सोई ।
ज्ञायकरूप वही परिनाम, न खेद कहूं तिन्हिके मधि होई ॥
खेदको कारण घातिय कर्म, सो मूलतैं नाश भयो मल धोई ।
यातैं अतिंद्रिय ज्ञान सोई, सुख है निहचै नहिं संशय कोई ॥२४

मनहरण ।

घातिया करम यही ज्ञानमाहिं खेद करै, जातैं मोहउदै मतवालो होत आतमा । झूठी वस्तुमाहिं बुद्धि सांची करि धावतु है, खेदजुत इंद्रीविषै जानै बहु भांतमा ॥ जाके घाति कर्मको सरवथा विनाश भयो, जग्यो ज्ञान केवल अनाकुल विख्यातमा । त्रिकालके ज्ञेय एकै बार चित्रभीतवत, जानै जोई ज्ञान सोई सुख है अध्यातमा ॥ २५ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

केवलज्ञान अनन्तप्रभातैं, पदारथके सब पार गया है ।
लोक अलोकविषैं जसु दिष्टि, विशिष्टपनें विसतार लया है ॥
सर्व अनिष्ट विनष्ट भये, औ जु इष्ट सुभाव सो लाभ लया है ।
यातैं अभेद दशा करिकै यह, ज्ञानहिको सुख सिद्ध ठया है ॥२६

दोहा ।

जब ही घाति विघातिकै, शुद्ध होय सरवंग ।
ज्ञानादिक गुन जीवके, सोई सौख्य अभंग ॥ २७ ॥

निजाधीन जानै लखै, सकल पदारथ वृन्द ।
खेद न तामैं होत कछु, केवलजोति सुछन्द ॥ २८ ॥
तातैं याही ज्ञानको, सुखकरि बरनन कीन ।
भेदविविच्छा छांड़िके, कुन्दकुन्द परवीन ॥ २९ ॥

(१०)

माधवी ।

जिनको यह घातियकर्म विघातिकै, केवल जोति अनन्त फुरी है ।
सुखमें उतकिष्ट अतींद्रिय सौख्य, तिन्हैं सरवंग अभंग पुरी है ॥
तिसको न अभव्य प्रतीत करैं, पुनि दूर हु भव्यकी बुद्धि दुरी है ।
यह बात वही शरधा धरि हैं, जिनके भवकी थिति आनि जुरी है ॥

दोहा ।

इन्द्रीसुखजुत मुक्ति जे, मानहिं मूढ़ अयान ।
तिनको मत शतखंड करि, श्रीगुरु हनी निशान ॥३१॥

(११)

माधवी ।

नर इंद्र सुरासुर इंद्रनिको, सहजै जब इंद्रियरोग सतावै ।
तब पीड़ित होकर गोगनको[1], नित भोग मनोगनमाहिं[2] रमावै ॥
तहँ चाहकी दाह नवीन बढ़ै, घृतआहुतिमें जिमि आगि जगावै ।
सहजानँद बोध विलास विना, नहिं ओसके बूंदसों प्यास बुझावै ॥

---

१ इन्द्रियोंको । २ मनोज्ञ ।

दोहा।

स्वर्गविषैं इंद्रादिको, इंद्रियसुख भरपूर।
सोउ खेद बाधासहित, सहजानँदतैं दूर ॥ ३३ ॥
तातैं इन्द्रीजनित सुख, हेय[1]रूप पहिचान।
ज्ञानानन्द अनच्छसुख, करो सुधारस पान ॥ ३४ ॥

(१२)

षट्पद।

जिन जीवनिको विषयमाहिं, रतिरूप भाव है ॥
तिनके उरमें सहज, दुःख दीखत जनाव है ॥
जो सुभावतैं दुःखरूप, इंद्री नहिं होई।
तो विषयनिके हेत, करत व्यापार न कोई ॥
करि[2] मीन[3] द्विरेफ[4] शलभ[5] हरिन, विषयनि-वश तन परहरहिं।
यातैं इंद्रीसुख दुखमई, कही सुगुरु भवि[6] उर धरहिं ॥ ३५ ॥

(१३)

मनहरण।

संसार अवस्थाहूमें विभाव सुभावहीसों, यही जीव आप सुखरूप छबि देत है। जातैं पंच इन्द्रिनिको पायकै मनोग भोग, ताको रस ज्ञायकसुभावहीसों लेत है ॥ देह तो प्रगट जड़ पुग्गलको पिंड तामें, ज्ञायकता कहां जाको सुभाव

---

१ त्याज्य। २ हाथी। ३ मछली। ४ भ्रमर। ५ पतङ्ग। ६ भव्यजीव।

अचेत है। तातैं जक्त मुक्त दोऊ दशामाहिं **वृंदावन,** सुखरूप भावनिको आतमा निकेत है ॥ ३६ ॥

(१४)

सर्वथा प्रकार देवलोकहूमें देखिये तो, देह ही चिदातमाको सुख नाहिं करै है। जद्दपि सुरग उतकिष्ट भोग उत्तम औ, वैक्रियक काय सर्व पुण्यजोग भरै है॥ तहां विषयनिके विवश भयो जीव आप, आप ही सुखासुखादि भावनि आदरै है। ज्ञायक सुभाव चिदानंदकंदहीमें **वृंद,** तातैं चिदानंद दोऊ दशा आप धरै है॥ ३७॥

(१५)

चौबोला।

जिन जीवनिकी तिमिर हरनकी, जो सुभावसों दृष्टि अहै।
तौ तिनको दीपक प्रकाशतैं, रंच प्रयोजन नाहिं चहै॥
तैसे सुखसुरूप यह आतम, आप स्वयं सरवंग लहै।
तहाँ विषय कहा करहिं **वृन्द** जहँ, सुधा सुभाविकसिंधु बहै॥

(१६)

मत्तगयन्द।

ज्यों नभमें रवि आपुहितैं, धरै तेज प्रकाश तथा गरमाई।
देवप्रकृत्ति उदै करिकै, इस लोकविषैं वह देव कहाई॥
ताही प्रकार विशुद्ध दशाकरि, सिद्धनिके मुनिवृन्द बताई।
ज्ञानरु सौख्य लसै सरवंग, सो देव अभंग नमों सिरनाई ३९

मनहरण ।

जैसे तेज प्रभा और उष्ण तथा देवपद, तीनों ही विशेषनिको धरै मारतंड है । तैसे परमातममें सुपरप्रकाशक, अनंतशक्ति चेतन सो ज्ञानगुनमंड है ॥ तथा आतमीक तृप्ति अनाकुल थिरतासों, सहज सुभाव सुखसुधाको उमंड है । आतमानुभवीके सुभाव शिलामाहिं सो, उकीरमान जक्तपूज्य देवता अखंड है ॥ ४० ॥

दोहा ।

अतिइन्द्री सुखको परम, पूरन भयो विधान ।
कुन्दकुन्द मुनिको करत, **वृंदावन** नित ध्यान ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागमश्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दावनकृतभाषामें दूसरा सुखअधिकार पूर्ण भया[1] ।

---

१ संवत् १९०५ कार्तिकशुक्ला ५ बुधवासरे ।

१ ऐसा ही ख प्रतिमें है ।

ओंनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ तृतीयज्ञानतत्त्वाधिकारः लिख्यते ।

मंगलाचरण । दोहा ।

वंदों श्रीसर्वज्ञपद, ज्ञानानंद सुचेत ।
जसु प्रसाद बरनन करों, इन्द्रिय सुखको हेत ॥

(१)

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेव-जती-गुरु,–पूजनमाहिं रहै अनुरागी ।
चार प्रकारके दान करै नित, शीलविषैं दिढ़ता मन पागी ॥
आदरसों उपवास करै, समता धरिकै ममता मद त्यागी ।
सो शुभरूपपयोग धनी, वर पुण्यको बीज बवै बड़भागी ॥ १ ॥

(२)

कवित्त (३१ मात्रा)

शुभपरिनामसहित आतमकी, दशा सुनो भवि वृन्द सयान ।
उत्तम पशु अथवा उत्तम नर, तथा देवपद लहै सुजान ॥
थिति परिमान पंच इंद्रिनिके, सुख विलसै तित विविध विधान
फेरि भ्रमै भवसागरहीमें, तातैं शुद्धपयोग प्रधान ॥ २ ॥

(३)

मत्तगयन्द ।

देवनिके अनिमादिक रिद्धिकी, वृद्धि अनेक प्रकार कही है ।
तौ भी अतिंद्रियरूप अनाकुल, ताहि सुभाविक सौख्य नहीं है ॥

यों परमागममाहिं कही गुरु, और सुनो जो तहाँ नित ही है।
देहविथाकरि भोग मनोगनिमाहिं, रमै समता न लही है ॥३॥

(४)

मत्तगयन्द।

जो नर नारक देव पशू सब, देहज दुःखविषैं अकुलाहीं।
तो तिनके उपयोग शुभाशुभको, फल क्यों करिकै बिलगाहीं ॥
जातैं निजातम पर्म सुधर्म, अतिंद्रिय शर्म नहीं तिनपाहीं।
तो भविवृन्द विचार करो अब, कौन विशेष शुभाशुभमाहीं ॥४॥

दोहा।

शुभपयोग देवादि फल, अशुभ दुखदफल नर्क।
शुद्धातम सुखको नहीं, दोनोंमें संपर्क ॥ ५ ॥
तब शुभ अशुभपयोगको, फल समान पहिचान।
कारजको सम देखिकै, कारन हू सम मान ॥ ६ ॥
तातैं इंद्रीजनित सुख, साधक शुभउपयोग।
अशुभपयोग समान गुरु, वरनी शुद्ध नियोग ॥ ७ ॥

(५)

अशोकपुष्पमंजरी।

वज्रपानि चक्रपानि जे प्रधान जक्तमानि[1],
ते शुभोपयोगतैं भये जु सार भोग है।
तासुतैं शरीर और पंच अच्छपच्छको,
सुपोषते बढ़ावते रमावते मनोग है ॥

१ जगन्मान्य।

लोकमें विलोकते सुखी समान भासते,
जैथैव जोंक रोगके विकारि रक्तको गहै।
चाह दाहसों दहै न सामभावको लहै,
निजातमीक धर्मको तहां नहीं सँजोग है ॥ ८ ॥

(६)

कवित्त (३१ मात्रा)।

जो निहचैकरि शुभपयोगतैं, उपजत विविध पुण्यकी रास।
स्वर्गवर्गमें देवनिके वा, भवनत्रिकमें प्रगट प्रकास ॥
तहां तिन्हैं तृष्णानल बाढ़त, पाय भोग-घृत आहुति ग्रास।
जातैं वृंद सुधा-समरस विन, कबहुं न मिटत जीवकी प्यास॥९॥

(७)

मनहरण।

देवनिको आदि लै जितेक जीवराशि ते ते, विषैसुख आयुपरजंत सब चाहैं हैं। बहुरि सो भोगनिको बार बार भोगत हैं, तिशना तरंग तिन्हैं उठत अथाहैं हैं ॥ आगामीक भोगनिकी चाह दुख दाह बढ़ी, तासुकी सदैव पीर भरी उर माहैं हैं। जथा जोंक रकत विकारको तब लों गहै, जौलों शठ प्राणांतदशाको आय गाहैं हैं ॥ १० ॥

(८)

कुण्डलिया।

इंद्रियजनित जितेक सुख, तामें पंच विशेष।

१ यथा एव=जैसे ही। २ साम्यभाव=समता।

परावीन बाधासहित, छिन्नरूप तसु भेष ॥
छिन्नरूप तसु भेष, विषम अरु बंध बढ़ावै ।
यही विशेषन पंच, पापहूमें ठहरावै ॥
तब अब को बुधिमान, चहै इंदीसुख गिंदी ।
तातैं भजत विवेकवान, सुख अमल अतिंदी ॥ ११ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

पुण्यरु पापविषैं नहिं भेद, कछू परमारथतैं ठहरै है ॥
जो इस भाँत न मानत है, बहिरातम बुद्धि वही गह रैहै ॥
सो जन मोह अछादित होय, भवोदधि घोरविषैं लहरै है ।
ताहि न वार न पार मिलै, दुखरूप चहूंगतिमें हहरै है ॥१२
जैसे शुभाशुभमें नहिं भेद, न भेद भने सुख दुःखकेमाहीं ।
ताही प्रकारतैं पुण्य रु पापमें, भेद नहीं परमारथठाहीं ॥
जातैं जहां न निजातम धर्म, तहां चित चाहकी दाह सदाहीं ।
तातैं सुरिंदहिमिंद नरिंदकी, संपतिको चित चाहत नाहीं ॥१३

पद्धतिका । (पद्धरीछंद)

जे जीव पुण्य अरु पापमाहिं । माने विभेद हंकार गाहिं ॥
हेमौहनकी बेड़ी समान । हैं बंध प्रगट दोनों निदान॥१४
परिपूरन जे धर्मानुराग । अवलंबैं शुद्धपयोग त्याग ॥
ताके फलतैं अहमिंद इंद । नर इंद संपदा लहैं वृंद ॥१५

१ सुवर्ण और लोहा ।

जाय गुन आतमाके, तेते एकै कालमाहिं ध्यावत उदारै है। ऐसे जब ध्याता होय ध्यावै निज आतमाको, **वृंदावन** सोई मोह कर्मको विदारै है ॥ २५ ॥

जैसे कोऊ मोतिनिको हार उर धारै ताको, भेद छांड़ि शोभाको अभेदसुख लेत है । तैसे अरहंतके समान जान आपरूप, अभेद सरूप अनुभवत सचेत है ॥ चेतना परजके प्रवाहतैं अभेद ध्यावै, तथा चित्प्रकाशगुनहूको गोपि देत है । केवल अभेद आतमीक सुख वेदै तहां, करता करम क्रिया भेद न धरेत है ॥ २६ ॥

जैसें चोखे रत्नको अकंप निर्मल प्रकाश, तैसें चित्प्रकाश तहां निश्चल लहत है । जब ऐसी होत है अवस्था तब भेद छेद, चेतनता मात्र ही सुभावको गहत है ॥ मोह अंधकार तहां रहै कौनके अधार, भानुको उजास तथा तिमिर दहत है । यही है उपाय मोह बाहिनीके जीतिबेको, **वृन्दावन** ताको शरनागत चहत है ॥ २७ ॥

(१३)

माधवी ।

जिस जीवके अंतरतैं तिहुरंतर, दूर भया यह मोह मलाना ।
निज आतमतत्त्व जथारथकी, तिनके भई प्रापति **वृंद** निधाना ॥
जदि जो वह रागरु दोष प्रमाद, कुभावहुको तजि देत सयाना ।
तदि सो वह शुद्ध निजातमको, निहचै करि पावत है परधाना॥

दोहा।

यातैं मोह निवारिके, पायौ करि बहु जत्न।
आतमरूप अमोल निधि, जो चिन्तामणि रत्न ॥ २९
ताके अनुभवसिद्धके, बाधक रागरु दोष।
इनहूंको जब परिहरै, तब अनुभवसुख पोष ॥ ३० ॥
नाहीं तो ये चोर ठग, लूटें अनुभव रत्न।
फिर पीछे पछिताय है, तातैं करु यह जत्न ॥ ३१ ॥
सावधान वरतौ सदा, आतमअनुभवमाहिं।
रागद्वेषको परिहरो, नहिं तो ठग ठगि जाहिं ॥ ३२ ॥

(१४)

मनहरण।

ताही सुविधान करि तीरथेश अरहंत, सर्व कर्म शत्रुनिको मूलतैं विदारी है। तिसी भांति देय उपदेश भव्य वृंदनिको, आप शुद्ध सिद्ध होय वरी शिवनारी है॥ सोई शिवमाला विराजतु है आज लगु, अनादिसों सिद्ध पंथ यही सुखकारी है। ऐसे उपकारी सुखकारी अरहंतदेव, मनवचकाय तिन्हैं बन्दना हमारी है ॥ ३३ ॥

(१५)

मनहरण।

जीवको जो दव्वगुनपर्जविषैं विपरीत, अज्ञानता भाव सोई मोह नाम कहा है। कर्नकके[1] खाये बउरायेके समान

1 धतूरा।

होय, जथारथज्ञान सरधान नाहिं लहा है ॥ ताही दृगमो-हतैं अछादित हो चिदानंद, पर द्रव्यहीको निजरूप जानि गहा है। तामें रागद्वेषरूप भाव धरैं धाय धाय, याहीतैं जगतमें अनादिहीसों रहा है ॥ ३४ ॥

अनादि अविद्यातैं विसारि निजरूप मूढ़, परदर्व देहादि-को जानै रूप अपना। इष्टानिष्ट भाव परवस्तुमें सदैव करै, वे तो ये स्वरूप याकी झूठी है कलपना ॥ जथा नदीमाहिं पुल पानीकी प्रबलतासों, दोय खंड होत तथा भावकी जल-पना। एकै मोह त्रिविध त्रिकंटक सुभाव धरै, झूठी वस्तु सांची दरसावे जथा सपना ॥ ३५ ॥

(१६)

षट्पद ।

मोह भावकरि तथा, राग अरु दोष भावकर ।
जब प्रनवत है जीव, तबहि बंधन लहंत तर ॥
विविधभांतिके भेद, तासु बंधनके भाखे ।
जाके फल संसार, चतुर्गतिमें दुख चाखे ॥
तातैं मोहादित्रिभावकों, सत्तासों अब छय करौ ।
है जोग यही उपदेश सुनि, भविक बृंद निज उर धरौ ॥ ३६

पुनः । दृष्टान्त—

जथा मोहकरि अंध, वनज[2] गज मत्त होत जब ।
आलिंगन जुतप्रीति, करिनिको[3] धाय करत तब ॥

१ दर्शन मोहिनीसे । २ जंगली हाथी । ३ हस्तिनी ।

तहां और गज देखि, द्वेषकरि सनमुखधावत ।
तृणछादित तब कूपमाहिं, परि संकट पावत ॥
यह मोह राग अरु द्वेष पुनि, बंध दशाको प्रगट फल ।
गजपर निहारि निजपरपरखि, तजहु त्रिकंटक मोह मल॥ ३७

दोहा ।

तातैं इस उपदेशकौ, सुनो मूल सिद्धंत ।
मोह राग अरु द्वेषकौ, करौ भली विधि अंत ॥ ३८ ॥

(१७)

द्रुमिला ।

अजथारथरूप पदारथको, गहिकैं निहचै सरधा करिवो ।
पशुमानुषमें ममता करिकै, अपने मनमें करुना धरिवो ॥
पुनि भोगविषैं मह इष्ट अनिष्ट, विभावप्रसंगनिको भरिवो ।
यह लच्छन मोहको जानि भले, मिल्यौ जोग है जोग इन्हैं हरिवो॥

दोहा ।

तीन चिह्न यह मोहके, सुगुरु दई दरसाय ।
'वृन्दावन' अब चूक मति, जड़तैं इन्हैं खपाय ॥ ४० ॥

(१८)

मनहरण ।

परतच्छ आदिक प्रमानरूप ज्ञानकरि. सरवज्ञकथित जो आगमतैं जानै है । सत्यारथरूप सर्व पदारथ **'वृंदावन'** ताको सरधान ज्ञान हिरदैमें आनै है ॥ नेमकरि ताको मोह

संचित खिपत जात, जाको भेद विपरीत अज्ञान विधानै है । तातैं मोह शत्रुके विनासिवेको भलीभांति, आगम अभ्यासिवो ही जोगता वखानै है ॥ ४१ ॥

(१९)

मनहरण ।

सर्व दर्वमाहिं गुन परजाय राजत हैं, तहां गुन सदा संग वसत अनंत है । क्रमकरि वर्तत कहावै परजाय सोई, इन तिनहूको नाम अरथ अनंत है ॥ तामें गुन पर्जको जो सरव अधारभूत, ताहीको दरव नाम भाषी भगवंत है । येही तीनों भेदरूप आतमा विलोको वृंद, जैसे **कुंदकुंद**-जीने भाषी विरतंत है ॥ ४२ ॥

द्रव्य गुन पर्जको कहावत अरथ नाम, तहां गुन पर्ज करै द्रव्यमें गमन है । तथा द्रव्य निज गुनपर्जमें गमन करै, ऐसे 'अर्थ' नाम इन तीनोंको अमन है ॥ जैसे हेम निज गुन पर्जमें रमन करै, गुन परजाय करें हेममें रमन है । ऐसो भेदा-भेद निजआतममें जानो **वृंद**, स्यादवाद सिद्धांतमें दोषको दमन है ॥ ४३ ॥

दोहा ।

यातैं जिन सिद्धांतको, करो भले अभ्यास ।

मिटै मोहमल मूलतैं, होय शुद्ध परकास ॥ ४४ ॥

(२०)

षट्पद ।

जो जन श्रीजिनराजकथित, उपदेश पाय करि ।
मोह राग अरु द्वेष, इन्हैं घातै उपाय धरि ॥
सो जन उद्यमवान, बहुत थोरे दिनमाहीं ।
सकल दुःखसों मुक्त, होय भवि शिवपुर जाहीं ॥
यातैं जिनशासन कथनका, सार सुधारस पीजिये ।
वृंदावन ज्ञानानंदपद, ज्यों उतावली लीजिये ॥ ४५ ॥

(२१)

मनहरण ।

आतमा दरव ही है ज्ञानरूप सदा काल, ज्ञान आतमीक यह आतमा ही आप है। ऐसी एकताई ज्ञान आतमकी **वृंदावन**, ताको जो प्रतीति प्रीति करै जपै जाप है ॥ तथा पुग्गलादिको सुभाव भलीभांति जानै, जानै भेद जैसे जीव कर्मको मिलाप है। सोई भेदज्ञानी निजरूपमें सुथिर होय, मोहको विनासै जातैं नसै तीनों ताप है ॥ ४६ ॥

(२२)

तातैं जिन आगमतैं द्रव्यको विशेष गुन, जथारथ जानो भले भेदज्ञान करिकै। तामें निज आतमके गुन निजमाहिं जानो, परगुन भिन्न जानो भर्मभाव हरिकै ॥ नाना दीप जोत एक भौनमें भरे हैं पै, नियारे सर्व तैसे सर्व दर्व भिन्न

भरिकै । जो तू मोह नासिके अबाध सुख चाहै तौ तो, आपहीमें आप देख ऐसे ध्यान धरिकै ॥ ४७ ॥

दोहा ।

दरवनिमें दो भांतिके, गुन वरतंत सदीव ।
है सामान्यसरूप इक, एक विशेष अतीव ॥ ४८ ॥
तामें आतमरसिक जन, गुन विशेष उरधार ।
द्रव्यनिको निरधार करि, सरधा धरैं उदार ॥ ४९ ॥
एकछेत्रअवगाहमें, हैं षड्द्रव्य अनाद ।
निज निज सत्ताको धरैं, जुदे जुदे मरजाद ॥ ५० ॥
ज्योंका त्यों जानों तिन्हैं, तामेंसों निजरूप ।
भिन्न लखौ सब दर्वतैं, चिदानंद चिद्रूप ॥ ५१ ॥
ताके अनुभवरंगमें, पगो 'वृंद' सरवंग ।
मोह महारिपु तुरत तब, होय मूलतैं भंग ॥ ५२ ॥

(२३)

मनहरण ।

सत्ता सनबंध दोय भांति है दरवमाहिं, सामान्य विशेष जो कुतर्कसों अबाध है । जैसे वृच्छजातितैं समान सर्व वृच्छ और, आमनिंब आदितैं विशेषता अगाध है॥ तैसें सत्ता भावकरि सव्व दव्व अस्ति औ, विशेष सत्ता लियैं सब जुदे निरुपाध है । साधु होय याको जो न निहचै प्रतीत करै, ताकों शुद्ध धर्मको न लाभ सो न साध है ॥ ५३ ॥

नरेन्द्र ।

यों सामान्य-विशेष-भावजुत, दरवनिको नहिं जानै ।
स्वपरभेदविज्ञान विना तब, निज निधि क्यों पहिचानै ॥
तो सम्यक्त भाव विनु केवल, दरवलिंगको धारी ।
तप संजमकरि खेदित हो है, बरै नाहिं शिवनारी ॥५४॥

मनहरण ।

जैसें रजसोधा रज सोधत सुवर्न हेत, जो न ताहि सोना-को पिछान उरमाहीं है । तौ तो खेद वृथा तैसें यहां भेदज्ञान विनु, सुपर पिछानैं मुनिमुद्रा जे धराहीं है ॥ तप संजमादिक कलेश करै कायकरि, सो तो शुद्ध आतमीक धर्म न लहाही है । ताके भावरूप मुनिमुद्रा नाहिं **वृंदावन**, ऐसे **कुंदकुंद** स्वामी विदित कहा ही है ॥ ५५ ॥

चौपाई ।

प्रथमहिं श्रीगुरुदेव कहा था । "**उवसपयामी सम्मं**"[1] गाथा ।
ताकरि साम्यभाव शिव कारन । यह निहचै कीन्हों उर धारन ॥
फिर कहि सुगुरु सुहित अभिलाषा॥ "**चारित्तं खलुधम्मो**"[2] भाषा॥
जोई सामभाव थिर पर्म । शुद्धपयोगरूप सो धर्म ॥ ५७ ॥
पुनि गुरुदेव कही करि करुना ।'**परिणमदि जेण दव्व**'[3]विवरुना ।
ताकरि सामभाव सोई आतम। अति एकतामई परमातम॥५८
फिर गुरु दीनदयाल उदारा । '**धम्मेण परिणदप्प**'[4] उचारा ।

१-चौथा गाथा । २-७ वां । ३-८ वां गाथा ४-ग्यारहवां गाथा ।

ताकरि सिद्ध कियो पद पर्म । साम्य शुद्ध उपयोग सुधर्म॥५९
इहि विधि शुद्ध धरम परशंसा । शुभ औ अशुभपयोग विध्वंसा ।
परम अतिन्द्री ज्ञानानंदा । निज स्वरूप पायो निर्द्वंदा ॥ ६०
अति हि अनाकुल अचल महा है । शुद्धधर्म निजरूप गहा है ॥
तहाँ अकंप जोति निज जागै । **वृंदावन** तासों अनुरागै ॥६१॥

(२४)

मनहरण ।

जाने मोहदृष्टिको विशिष्टपने घातकरि, पायो निजरूप भयो सांचो समकिती है । सरवज्ञभाषित सिद्धांतमें प्रवीन अति, जथारथ ज्ञान जाके हियेमें जगती है ॥ वीतराग चारितमें सदा सावधान रहै, सोई महामुनि शिवसाधक सुमती है। ताही भावलिंगी मुनिराजको धरम नाम, विशेषपनेंतैं कह्यो सोई शुद्ध जती है ॥ ६२ ॥

अनेकांतरूप जिनराजको शबद ब्रह्म, होउ जयवंत जामें सांचो शिवपंथ है । अनादिकी मोह–गांठि भेदके किनोर करै, आतमस्वरूप जहां पावै भ्रम मंथ है ॥ शुद्ध उपयोग पर्म धर्म जामें लाभ होत, छूटै जातैं सर्व कर्मबंधनको कंथ है । **वृंदावन** वंदत मुनिंद **कुंदकुंद**जूको, सेवैं शिव होत **प्रवचनसार** ग्रंथ है ॥ ६३ ॥

दोहा।

वंदों श्रीजिनराजपद, शुद्ध चिदानंदकंद।
ज्ञानतत्त्वअधिकार यह, पूरन भयो अमंद ॥ ६४ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागमश्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दावनअग्रवाल गोइलगोत्री काशीवासिकृत भाषामें तीसरा ज्ञानतत्त्व अधिकार सम्पूर्ण भया।

संवंत्[1] १९०५ कार्तिकशुक्ला द्वादशी बुधवासरे वृन्दावनने लिखी, प्रथम प्रति है, सो जयवंती वरतौ। श्रीरस्तु।

१ दूसरी प्रतिमें भी इसी प्रकार लिखा है।

ओ नमः सिद्धेभ्यः

अथ चतुर्थ–ज्ञेयतत्त्वाधिकारः ।

तत्र इष्टदेववन्दना ।

दोहा ।

वन्दों श्रीसर्वज्ञ जो, वर्जित सकलविकार ।
विघनहरन मंगलकरन, मनवांछित-दातार ॥ १ ॥
ज्ञेयतत्त्वके कथनका, अब अधिकार अरंभ ।
श्रीगुरु करत दयालचित, त्यागि मोह मद दंभ ॥ २ ॥
कुंदकुंद गुरुदेवके, चरनकमल सिर नाय ।
वृंदावन भाषा लिखत, निज परको सुखदाय ॥ ३ ॥

(१)

मनहरण ।

जेते ज्ञानगोचर पदारथ हैं तेते सर्व, दर्व नाम निहचैसों पावैं सरवंग हैं । फेरि तिन द्रव्यनिमें अनंत अनंत गुण, भाषे जिनदेव जाके वचन अभंग हैं ॥ पुनि सो दरव और गुननिमें **वृंदावन**, परजाय जुदी जुदी वसैं सदा संग हैं । ऐसी दोई भांति परजायको न जानै जोई, सोई मिथ्यामती परसमयी कुढंग हैं ॥ ४ ॥

विशेषवर्णन–दोहा ।

ज्ञेय पदारथ है सकल, गुन–परजैसंजुक्त ।
तातैं दरव कहावहीं, यह जिनवरकी उक्त ॥ ५ ॥

गुन कहिये विस्तारकों, जो चौड़ाईरूप।
संग वसत नित दरवके, अविनाभावसरूप ॥ ६ ॥
परजैकों आयत कहैं, ज्यों लम्बाई होय।
घटै बढ़ै क्रमसों रहै, भेद तासुके दोय ॥ ७ ॥
एक दरव परजाय है, गुनकी परज दुतीय।
दो दो भेद दुहूनमें, सुनो समरसी जीय ! ॥ ८ ॥

अथ पर्यायभेदकथन-मनहरण।

दर्वकी परज दोय भांति यों कथन करी, एक है समान-जाति दूजी असमान है। पुग्गलानु अनेकको खंध सो समान-जाति, जीव पुदगल मिलें असमानवान है ॥ गुनहूकी दोय परजाय एक सुभाविक, षटगुनी हानि-वृद्धि जथा जोग ठान है। दूसरो विभाव वरनादि गुन खंधविषैं, ज्ञानादिक पुग्ग-लके जोग ज्यों मलान है ॥ ९ ॥

वस्त्रहीको पाट जोड़ें होतु है समानजाति, तथा पुग्ग-लानु मिलें खंध परजाय है। रेशमी कपासी मिलें होत अस-मान चीर, तथा देह जीव पुदगल मिले पाय है ॥ जथा वस्त्र सेत है सुभाव गुन परजाय, तथा षटगुनी हानि-वृद्धि भेद गाय है। परके प्रसंगसे तरंग ज्यों विभाव त्यों ही, ज्ञानादि परके संग विभाव कहाय है ॥ १० ॥

कवित्त। (३० मात्रा)

इहि विधि दरवनिके गुन परजै, भनी जिनागममें तहकीक।
भेदज्ञानकरि भविक वृंद दिढ़, सरधा रुचिसों धरै अधीक ॥

मिथ्यामती न जानै याकों, एक एक नय गहै अठीक ।
शिवहित हेत अफल करनी तसु, "पीटै मूढ़ सांपकी लीक" ११

(२)

षट्पद ।

जे अज्ञानी जीव, देहहीमें रति राचे ।
अहंकार ममकार धरे, मिथ्यामद माचे ॥
तिनहीको परसमय नाम, भगवंत कहा है ।
अरु जो आतमभावविषैं, लवलीन रहा है ॥
तिन आतमज्ञानी जीवको, स्वसमयरत जानो सही ।
वह चिद्विलास निजरूपमें, रमत वृंद निज निधि लही॥ १२॥

मनहरण ।

अनादि अविद्यातैं आच्छादित है सांचो ज्ञान, असमान देहहीको जानै रूप अपना । नाना निंद्यक्रियामाहिं अहं-ममकार करै, सोई परसमै ताकी झूठी है जलपना ॥ जिनके स्वरूपज्ञान भयो है जथारथ औ, मिटी मोह राग दोष-भावकी कलपना । एकरूप ज्ञानजोति जगी है अकंप जाके, सोई स्वसमयको न भवाताप तपना ॥ १३ ॥

(३)

काव्य ।

जो स्वभाव नहिं तजै, सदा अस्तित्व गहै है ।
औ उतपत व्यय ध्रौव्य,—सहित सब काल रहै है ॥

पुनि अनंतगुणरूप, तथा जो परज नई है।
ताहीको गुरुदेव, दरव यह नाम दई है ॥ १४ ॥

सोरठा।

गुन है दोय प्रकार, इक सामान्य विशेष इक।
सुनि समुझो निरधार, सरधा धरि भवदधि तरो ॥ १५॥

मनहरण।

अस्ति नास्ति एकानेक दर्व्वत्त[1] परेजवत्त[2], सर्वासर्वगत सप्रदेशी अप्रदेशी है। मूरत अमूरत सक्रिया औ अक्रियावान, चेतन अचेतन सकर्त्ता कर्त्ता तेसी है॥ भोगता अभोगता अगुरुलघु ए समान, दर्वनिके गुन वृंद गुरु उपदेशी है। अवगाह गति थिति वर्तना मूरतवंत, चेतनता गुन कहे लच्छन विशेषी है ॥ १६ ॥

दोहा।

दरवनिके अरु गुननिके, परनतिके जे भेद।
सो परजाय कहावई, समुझो भवि भ्रमछेद ॥ १७ ॥

मनहरण।

उतपाद वेय[3] ध्रुव[4] गुन परजाय यही, लच्छनको धरै द्रव्य लच्छ नाम पावै है। ताहि उतपादादि औ गुन परजायहीतैं, लखिये है यातैं यह लच्छन कहावै है॥ करतार[5] साधन[6] अधार[7] दर्व इनको है, इन विना द्रव्यहू न सिद्धिता लहावै है।

---

१ द्रव्यत्व—द्रव्यपना। २ पर्यायवत्व—पर्यायपना। ३ व्यय—नाश। ४ ध्रौव्य। ५ कर्त्ता। ६ करण। ७ अधिकरण।

लच्छ और लच्छनमें जद्यपि विविच्छाभेद, तथापि सरूपतैं अभेद ठहरावै है ॥ १८ ॥

(४)

दर्वका सरवकालमाहिं असतित्व सोई, निहचैसों मूल-भूत सहज सुभाव है । सोई निज गुण औ स्वकीय नाना पर्जकरि, औ उतपाद व्यय ध्रौवता लहाव है ॥ करतार साधन अधार दर्व इनको है, इन विना द्रव्यहू न सिद्धिताकों पाव है । द्रव्य-छेत्र-काल-भावकरि सदा एक ही है, साधिवेके हेत लच्छ लच्छन जनाव है ॥ १९ ॥

जैसे द्रव्य-छेत्र-काल-भावकरि कंचनतें, पीततादि गुन पैर्जे कुंडल न जुदे हैं । करतार साधन अधार याको हेम ही है, जातैं हेमसत्ता विना इनको न उदै है । कुंडलको नाश उतपाद होत कंकनको, हेमद्रव्य ध्रौव्य गुन पीतादि समुदै है । तैसे सर्व दर्व निज गुन परजाय तथा, उतपाद व्यय ध्रुव सहित प्रमुदै है ॥ २० ॥

दोहा ।

दरव स्वगुनपरजायकरि, उतपत-वय-धुव-जुत्त ।
रहत अनाहतरूप नित, यही सरूपास्तित्त ॥ २१ ॥
पर दरवनिके गुन परजे, तिनसों मिलतौ नाहिं ।
निज स्वभावसत्ताविषैं, प्रनमन सदा कराहिं ॥ २२ ॥

१ जिसका लक्षण किया जावे । २ पर्याय । ३ सुवर्ण-सोना । ४ स्वरूपास्तित्व । ५ पर्याय ।

(५)

मनहरण।

नाना परकार यहां लच्छनके भेद राजैं, तामें एक सत सर्व दर्वमाहिं व्यापै है। ऐसे सरवज्ञ वस्तुको स्वभाव धर्म कह्यो, जो सरव दर्वको सदृशकरि थापै है॥ जैसे वृच्छ जातिकी सदृश और सत्ता और, लच्छन विशेषकरि जुदी २ तापै है। मुख्य गौन द्वारतैं अदोष वृंद सर्व सधै, सामान्य विशेष धर्मधारी दर्व आपै है॥ २३॥

दोहा।

सहजस्वरूपास्तित्वकरि, जुदे जुदे सब दर्व।
निज निज गुन लच्छन धरैं, है विचित्र गति पर्व॥२४॥
अरु सादृश्यास्तित्वकरि, सब थिर थपन अबाध।
सत लच्छनके गहनतैं, यही एक निरुपाध॥ २५॥
तिहूँकालमें जासको, बाधा लगै न कोय।
सोई सतलच्छन प्रबल, सब दरवनिमें होय॥ २६॥

(६)

मनहरण।

अपने सुभावहीसों स्वयंसिद्ध द्रव्य नित, निजाधार निजगुणपरजको मूल है। सोई है सत्तास्वरूप ऐसे जिन-भूप कह्यौ, तत्त्वभूत वस्तुको स्वभाव अनुकूल है॥ द्रव्यको स्वभावरूप सत्ता गुन 'वृंदावन, प्रदेशतैं भेद नाहिं दोऊ

समतूल है । आगम प्रमान जो न करै सरधान याको, सोई परसमयी मिथ्याती ताकी भूल है ॥ २७ ॥

दोहा ।

जदपि जीव पुद्गल मिले, उपजहिं बहु परजाय ।
तदपि न नूतन दरवकी, उतपति वरनी जाय ॥ २८ ॥

मनहरण ।

द्रव्य गुनखान तामें सत्ता गुन है प्रधान, गुनी गुनको यहां प्रदेशभेद नाहीं है । संज्ञा संख्या लच्छन प्रयोजनतैं द्रव्यमाहिं, कथंचित भेद पै न सर्वथा कहाहीं है ॥ दंडके धरेतैं जैसे दंडी तैसे यहां नाहिं, यहांतो स्वरूपतैं अभेद ठहराहीं है । दर्वको सुभाव है अनंत गुनपर्जवंत, ताको सांचो ज्ञान भेदज्ञानी वृंदपाहीं है ॥ २९ ॥

जब परजायद्वार दरव विलोकिये तौ, गुनी गुन भेदनिकी उठत तरंग है । और जब दर्वदिष्ट देखिये तौ गुनीगुन, भेदभाव डूबे रहै एक रस रंग है ॥ जैसे सिन्धुमाहिं भेद जद्दपि कलोलिनितैं, निहचै निहारैं वारि सिंधुहीको अंग है । तैसे दोनों नैनके समान दोनों नयननितैं, वस्तुको न देखै सोई मिथ्याती कुढंग है ॥ ३० ॥

(७)

आपने सुभावपरनतिविषैं सदाकाल, तिष्ठतु है सत्तारूप वस्तु सोई दर्व है । द्रव्यको जो गुनपरजायविषैं परिनाम, निश्चैकरि ताहीको स्वभाव नाम सर्व है ॥ सोई धुव उतपाद

वय इन भावनितैं, सदा सनबंधजुत राजत सुपर्व है।
ऐसी एकताई कुंदकुंदजी बताई वृंद, बन्दतु है तिन्हैं सदा-
त्यागि उर गर्व है ॥ ३१ ॥

विशेषवर्णन। चौपाई।

दरवनिको गुनपरजयरूप। जो परिनाम होत तद्रूप।
ताको नाम सुभाव भनंत। सो ध्रुव-उतपत-वयजुत तंत ॥३२॥
एक दरवके जथा कहेस। चौड़े सूक्ष्म अनेक प्रदेश॥
त्यों प्रनवनरूपी परवाह। लंबाई क्रमसहित अथाह॥ ३३ ॥

मनहरण।

दर्वनिके परदेश चौड़ाई समान कहे, जातैं ये प्रदेश सदा-
काल स्थायीरूप हैं। पर्नत प्रवाह ताकी क्रमहीतैं होत तातैं,
लंबाई समान याको सुगुरु प्ररूप हैं॥ जेते हैं प्रदेश ते ते
निज निज थानहीमें, पुव्वकी अपेच्छा उतपन्नमान भूप हैं।
आगेकी अपेच्छा व्ययरूप औ दरव एक, सर्वमाहि यातैं ध्रुव
अचल अनूप है॥ ३४ ॥

दोहा।

या प्रकार परदेशको, उतपत वय ध्रुव जान।
जथाजोग सरधा धरो, अब सुन और बखान॥ ३५ ॥

मनहरण।

जैसे परदेशनिको त्रिधारूप सिद्ध करी, तैसे परिनाम-
हूको ऐसे भेद कहा है। पहिले समैके परिनाम उतपाद-

रूप, पीछेकी अपेच्छा सोई वयभाव गहा है ॥ सदा एक दर्वके अधार परवाह बहै, तातैं द्रव्य द्वारतैं सो ध्रौव्य सरदहा है। ऐसे उतपाद वय धुवरूप परिनाम, दर्वको सुभाव निरुपाध सिद्ध लहा है ॥ ३६ ॥

जैसे मुकताफलकी माला सूतमाँहि पोयें, तेजपुंज मंजु नाना मोतिनिकी दाना है। पुव्व पुव्व दानेकी अपेच्छा आगे आगेवाले, उतपाद पाछेवाले वयकरि माना है ॥ एकै सूत सर्वमाहिं तासकी अपेच्छा धुव, तैसे दर्वमाहिं तीनों साधत सयाना है। ऐसे नित्यानित्य लच्छ लच्छन अबाध सधैं, धन्य जैनवैन स्यादवाद जाको बाना है ॥ ३७ ॥

(८)

मत्तगयन्द।

भंग विना न बनै कहुं संभेव, संभव हू विन भंग न हो है।
औ निहचै विनु ध्रौव पदारथ, व्यै उतपाद कहूं नहिं सोहै ॥
ज्यों मृतपिंडतैं कुंभ बनै, धुव दर्व दोऊमहँ एकहि हो है।
त्यों सब दर्व त्रिधातम लच्छन, जानत वृंद विचच्छन जो है॥३८

चौपाई।

वय विनु नाहिं होत उतपादं। उतपत विना न व्यय मरजादं।
उतपत वय विनु ध्रौव्य न होई।धुव विन उतपत वय हु न जोई३९

१ व्यय (नाश)। २ उतपाद।

तातैं जो उतपत सोई वै[1] । जोई नाश सोई उतपत है ॥
जो उतपत वय है ध्रुव सोई । जो ध्रुव सो उतपत व्यय होई ॥४०॥

मनहरण ।

जैसे मृत[2]पिंडको विनाश कुंभ[3] उतपाद, दोनों परजाय धरे दर्व ध्रुव देखिये । विना परजाय कहूं दर्व नाहिं सरवथा, द्रव्य विना परजाय हू न कहूं पेखिये ॥ तातैं उतपादादि स्वरूप दर्व आपही है, स्वयंसिद्ध भली भांति सिद्ध होत लेखिये । यामें एक पच्छ गहैं लच्छ लच्छ दोष लगैं, वृंदावन तातैं त्रिधा लच्छन परेखिये ॥ ४१ ॥

षट्पद ।

केवल ही उतपाद कहैं, दो दूषन गाजै ।
उपादान कारन-विहीन, घट कर्म न छाजै ॥
ध्रौव्य वस्तु विनु जो मूरख, उतपाद बतावै ।
सो अकाशके फूल, बांझसुत मौर बनावै ॥
जो केवल ही वय मानिये, तौ उतपति विनु नास किमि ।
पुनि ध्रौव्यवस्तुके नासतैं, ज्ञानादिक गुन नास तिमि ॥ ४२ ॥
जो केवल ध्रुव ही प्रमान, इक पच्छ मानियै ।
तो दो दूषन तासमाहिं, परतच्छ जानियै ॥
प्रथम तास परजाय,-धरमको नाश होत है ।
विनु परजाय न दरव, कहूं निहचै उदोत है ॥

---

१ व्यय-नाश । २ मिट्टीका पिंड । ३ घड़ा ।

जो है अनित्त कहँ नित्त पद, तौ मनकी गति नित्त गन ।
यातैं निरविघन त्रिधातमक, लच्छन द्रव्य प्रतच्छ भन ॥ ४३॥

(९)

द्रुमिला ।

परजायविषैं उतपादरु व्यै धुव, वर्ततु हैं क्रमही करिके ।
निहचैकरि सो परजाय सदा, नित दर्वहिमाहिं रहै भरिके ॥
तिहितैं सबमें वह द्रव्यहि है, सरवंग दशा अपनी धरिके ।
जिमि वृच्छतैं मूल न शाखा जुदे, तिमि द्रव्य लखो भ्रमको हरिके ॥

मनहरण ।

जैसे वृच्छ अंशी ताके अंश बीज अंकुरादि तामें तीनों भेद भाव ऐसे लखि लीजिये । वीजको विनाश उतपाद होत अंकुरको, वृच्छ धुवताई ऐसी सरधा धरीजिये ॥ नूतन दरबको न होत उतपाद कहूं, यह तौ असंभौ कभी चितमें न दीजिये । दर्वकी स्वभावरूप परजाय पर्नतिमैं, तीनों दशा होत वृंद याहीको पतीजिये ॥ ४५ ॥

(१०)

काव्य ।

उतपत वय धुव नाम सहित, जो भाव कहा है ।
दरव तासुतैं एकमेक ही, होय रहा है ॥
पुनि सो एकहि समय, त्रिविध परनवति अभेदं ।
तातैं त्रिविधसरूप, दरव निहचै निरवेदं ॥ ४६ ॥

दोहा ।

यहां प्रश्न कोई करत, उतपादादिक तीन ।
जुदे जुदे समयनिविषैं, क्यों नहिं कहत प्रवीन ॥ ४७ ॥
तीन काज एकै समै, कैसे हो है सिद्ध ।
समाधान याको करौ, हे आचारज वृद्ध ॥ ४८ ॥
उतपादिकके पृथक, पृथक दरव जो होय ।
तब तो तीनों समयमें, तीन संभवै सोय ॥ ४९ ॥
जहां एक ही दरव है, तहँ इक समयमँझार ।
तीनों होते संभवत, दरवदिष्टिके द्वार ॥ ५० ॥

मनहरण ।

दर्वहीकी निज परजाय औ सु पर्नतितैं, उतपाद धुव वय दशा होत वरनी । दर्व दोनों रूप परिनवै आप आपहीमें, ताहीकी अपेक्षा एकै समै तीनों करनी ॥ मृत्तिकातैं कुंभ जथा माटी धुव दोनोंमाहिं, द्रव्य द्वार एकै समै ऐसे उर धरनी । स्यादवादवानीकी अपेच्छासेती एकै समै, ऐसे तीनों साधी हैं मिथ्यातकी कतरनी ॥ ५१ ॥

(११)

काव्य ।

दरवनिका परजाय, एक प्रगटत उदोत है ।
बहुरि अन्य परजाय, दशा जहँ नाश होत है ॥
तदपि दरब नहिं नसै, नहीं उपजै तहँ जानो ।
सदा ध्रौव्य ही आपु रहै, निहचै परमानो ॥ ५२ ॥

छप्पय ।

संजोगिक परजाय, दोय परकार कहा है ।
इक समान जातीय, दुतिय असमान गहा है ॥
पुग्गलानु मिलि खंध, होत सोई समान है ।
जिय पुदगल मिलि देह, सु तौ असमान मान है ॥
इन परजैके उपजत नसत, दरव न उपजत नहिं नसत ।
नित ध्रौव दशा निज धारिके, सदा एक रस ही लसत॥५३॥

(१२)

मनहरण ।

दरव स्वयमेव ही सरब काल आपहीसों, गुनसों गुनंतर प्रनवत रहत है । सत्तातैं अभिन्न तातैं गुननिकी परजाय, दर्व ही है निश्चै ऐसे सुगुरु कहत है ॥ जैसे आम हरित वरन गुण त्याग सोई, पीत गुण आप ही सुभावसों लहत है । ध्रौवरूप आम दोउ दशामाहिं **वृंदावन**, तैसे दर्व सदा त्रिधा लच्छन लहत है ॥ ५४ ॥

(१३)

छप्पय ।

जो यह दरव न होय, आपु सत्ताको धारक ।
तौ तामें ध्रुव भाव, कहा आवै थितिकारक ॥
जो ध्रुवता नहिं धरै, कहो तब दरव होय किमि ।
तातैं सत्तारूप दरव, स्वयमेव आपु इमि ॥

है दरव गुनी सत्ता सुगुन, सदा एकता भाव धरि ।
परदेश भेद इनमें नहीं, यों भवि वृंद प्रतीत करि ॥५५॥

(१४)

मनहरण ।

जहां परदेशकी जुदागीरूप भेद सो तौ, प्रविभक्त जानों जथा दंडी दंडवान है । संज्ञा लच्छनादितैं दरव सत्तामाहिं भेद, वीरस्वामी ताको नाम अन्यत्व बखान है ॥ द्रव्यके अधार तो अनंत गुन तामें एक, सत्ताहू वसत सु विशेषन प्रमान है । सत्तामाहिं नाहिं और गुनको निवास वृंद, ऐसे द्रव्य सत्तामें विभेद ठहरान है ॥ ५६ ॥

जैसे वस्त्र द्रव्य सेत गुनको धरै है आपु, जदपि प्रदेश एक तदपि विभेद है । वस्त्रको तो बोध फरसादि इन्द्रीहूतैं होत, पै सुपेद गुन नैन द्वारहीतैं वेद है ॥ वस्त्रतैं सुपेद गुन जुदो जो न मानै तौ, फरस आदि इंद्री क्यों न जानत सुपेद है । ऐसे दर्व गुनमें हैं भेद संज्ञालच्छनतैं, नाना भांति साधै स्यादवादी ही अखेद है ॥ ५७ ॥

दोहा ।

सत्ता दरवविषैं सुगुरु, ज्यों प्रदेश नहिं भेद ।
त्यों स्वरूपहूकेविषैं, कीजे भेद निखेद ॥ ५८ ॥

छप्पय ।

सत्ता दरवविषैं विभेद, कहु क्यों न मानियै ।
दरवविषैं गुनगन अनंत, थिति पृथक जानियै ॥

निजाधार है दरव, विविध परजायवंत है ।
गुनपरजै सब जुदे जुदे, जामें वसंत है ।
औ सत्ता दरवाधीन है, तासुमाहिं नहिं अपर गुन ।
है एक विशेषन दरवको, तातैं भेद अवश्य सुन ॥ ५९ ॥

(१५)

सत्ता तीन प्रकारसहित, विस्तार कहा है ।
दरवसत्त गुनसत्त, सत्त परजाय गहा है ॥
जो तीनोंके माहिं, परस्पर भेद विराजै ।
सोई है अन्यत्व भेद, इमि जिन धुनि गाजै ॥
है दरवसत्त गुन-परज-गत, गुनसत एक सुधरम-रत ।
परजायसत्त क्रमको धरै, यातैं भेद प्रमानियत ॥ ६० ॥

मनहरण ।

जैसे एक मोतीमाल तामें तीन भांत सेत, सेत[1] हार सेत सूत सेतरूप मैनिया[2] । तैसे एक दर्वमाहिं सत्ता तीन भांत सोहै, दर्वसत्ता गुनसत्ता पर्जसत्ता भनिया ॥ दरवकी सत्ता है अनंत धर्म सर्वगत, गुनकी है एक ही धरमरूप गनिया । परजकी सत्ता क्रमधारी ऐसी भेदाभेद, साधी मुनि वृंद श्रुत-सिंधुके मथनियाँ[3] ॥ ६१ ॥

(१६)

दर्व जो है अनंत धरमको आधारभूत, सो न गुन होत यों

---

१ श्वेत–सफेद । २ गुरिया । ३ मथनेवाले ।

विचार उर रखिये। तथा जो है गुन एक धर्म निजरूप करि, सोऊ दर्व नाहीं होत निहचै निरखिये ॥ ऐसे गुन गुनीमें विभेद है सुरूप करि, सर्वथा जुदागी न अभाव ही कर-खिये। द्रव्य और गुनमें विभेद विवहार तैसो अनेकांत पच्छसों विलच्छके हरखिये ॥ ६२ ॥

दोहा।

दरव और गुनकेविषैं, है अन्यत्वविभेद।
जुदे दोउ नहिं सरवथा, श्रीगुरु करी निषेद ॥ ६३ ॥

मनहरण।

गुनगुनीमाहिं सरवथा ही अभावरूप, भेद माने दोनों-हीको नाम सरवथा है। जातैं जेते गुन तेते जुदे जुदे दर्व होई, सोऊ बात सधै नाहिं कहिवौ विकथा है ॥ गुनीके अभाव भयें गुनको अभाव होत, सोनेमाहिं साधि देखो साधी साध जथा है। तातैं व्यवहारतैं कथंचित विभेद मानो, वस्तुसिद्धिहेत श्रुतिमाहिं जथा मथा है ॥ ६४ ॥

(१७)

द्रव्यको सुभाव परिनाम जु है निश्चैकरि, अस्तित स्वरूप सोई सत्ता नाम गुन है। सर्व गुनमें प्रधान फहरै निशान जाको, उतपादवयधुवसंजुत सुगुन है ॥ ताही असतित्तरूप सत्तामें विराजै दर्व, यातैं सत नाम द्रव्य पावत अपुन है। ऐसे सत्ता गुन औ दरव गुनी एकताई, साधी कुंदकुंद वृंद वंदत निपुन है ॥ ६५ ॥

(१८)

कुंडलिया ।

ऐसो गुन कोऊ नहीं, दरव विना जो होय ।
विना दरव परजाय हू, जगमें लखै न कोय ॥
जगमें लखै न कोय, बहुरि दिढ़तर ऐसे सुन ।
दरवहिका अस्तित्वभाव; सोई सत्ता गुन ॥
तिस कारन स्वयमेव, दरव सत्ता ही है सो ।
अनेकांततैं सधत, वृंद निरदूषन ऐसो ॥ ६६ ॥

(१९)

छप्पय ।

या विधि सहजसुभावविषैं, जो दरव विराजै ।
सो दरवौ परजाय, दोउ नयमय छबि छाजै ॥
दरवार्थिकनयद्वार, सदा सदभावरूप है ।
परजद्वारतैं असदभाव, सोई प्ररूप है ॥
इन दो भावनिसंजुक्त नित, उतपत होत बखानिये ।
नयद्वार विविच्छाभेद है, वस्तु अभेद प्रमानिये ॥ ६७ ॥

दोहा ।

दो प्रकार उतपादजुत, दरव रहत सब काल ।
सद उतपाद प्रथम कह्यो, दुतिय असतकी चाल ॥६८॥
दरव अनादि अनंत जो, निज परजैकेमाहिं ।
उपजत हैं सो दरवदग, सद उतपाद कहाहिं ॥ ६९ ॥

जो पूरव ही थो नहीं, ताको जो उतपाद ।
सो परजय-नयद्वारतैं, असदभाव निरवाद ॥ ७० ॥

(२०)

मनहरण ।

जीव दर्व आपने सुभाव प्रनवंत संत, मानुष अमर वा अपर पर्ज धारैगो । तिन परजायनिसों नानारूप होय तऊ, कहा तहाँ आपनी दरवशक्ति छाँरैगो ॥ जो न कहूं आपनी दरव शक्ति छाँड़ै तब, कैसे और रूप भयो निहचै विचारैगो । ऐसे दर्व शक्ति नानारूप परजाय व्यक्त, जथारथ जाने वृन्द सोई आप तारैगो ॥ ७१ ॥

(२१)

एक परजाय जिहिकाल परिनवै जीव, तिहिकाल और परजायरूप नाहीं है । मानुष परज परिनयौ तब देव तथा, सिद्धपरजाय तहाँ कहां ठहराही है ॥ देव परजायमें मनुष-सिद्ध पर्ज कहां ऐसे परजायद्वार भेद विलगाही है । या प्रकार एकता न आई तब कैसे नाहिं, पर्जद्वार नाना नाम दरव-लहाही है ॥ ७२ ॥

(२२)

दर्वार्थिकनय नैन खोलकर देखिये तो, सोई दर्व और रूप भयो नाहिं कबही । फेर परजाय नय नैनतैं निहारिये तो, सोई नानारूप भयो जैसो पर्ज जबही ॥ जातैं नर नारकादि

काय जिहि काल लहै, तासों तनमई होय रहै तैसो तबही। जैसे आगि एकपै प्रवेश नाना ईधनमें, ईधन अकारतैं भयौ है भेद सबही ॥ ७३ ॥

(२३)

छप्पय ।

दरव कथंचित अस्तिरूप, राजै इमि जानो ।
बहुर कथंचित नास्तिरूप, सोई परमानो ॥
होत सोइ पुनि अवक्तव्य, ऐसे उर धरनी ।
फिर काहू परकार सोइ, उभयातम बरनी ॥
पुनि और सुभंगनिकेविषैं, जथाजोग सोई दरव ।
निरवाध वसत निजरूपजुत, श्रीगुरु भेद भने सरव ॥७४॥

मनहरण ।

आपनी चतुष्टै दर्व-छेत्र-काल-भावकरि, तिहूंकालमाहिं दरव अस्तित-सरूप है। सोई परद्रव्यके चतुष्टैकरि नास्ति सदा, फेर सोई एकै काल उभैरूप भूप है ॥ एकै काल नाहिं जात कह्यो तातैं अकथ है, फेर सोई अस्ति अवक्तव्य सु अनूप है। फेर नास्ति अकथ औ अस्ति नास्ति अकथ है, कथंचितवानी सो सुधारसको कूप है ॥ ७५ ॥

तथा चोक्तं देवागमकारिकायां—

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नुवात् ।
सर्व्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥ ९ ॥

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे ।
प्रध्वंसस्य च धर्म्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥ १० ॥
सर्व्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे ।
अन्यत्र समवायेन व्यपदिश्येत सर्वथा ॥ ११ ॥
अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम् ॥
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥ १२ ॥

दोहा ।

एक अरथवाचक शबद, भावअस्ति ये जान ।
कहु अभाव कै नास्ति कहु, दोनों अरथ समान ॥ ७६ ॥
जो पदार्थ सब सर्वथा, गहिये भावहिरूप ।
अरु अभाव सब लोपिये, तौ तित दूपनभूप ॥ ७७ ॥
एक दरव सरवातमक, तव निहचै ह्वै जाय ।
आदि अंत पुनि नहिं वनै, कीजे कोटि उपाय ॥ ७८ ॥
ज्यों माटीमें पुव्व ही, कुंभ नहीं है रोप ।
प्रागभाव याको कहत, ताको ह्वै है लोप ॥ ७९ ॥
जो प्रध्वंसाभावको, लोप करै तब येह ।
कुंभकर्मको नाश नहिं, औ अनंतता लेह ॥ ८० ॥
जो अन्योन्य अभाव है, धरम दरवकेमाहिं ।
ताहि लोपते सब दरव, एक रूप ह्वै जाहिं ॥ ८१ ॥
जो अत्यंताभाव है, ताहि विलोपैं ठीक ।
दरव न कैस हु सधि सकै, दूषन लगै अधीक ॥ ८२ ॥

तातैं दरवहिकेविषैं, बसै अभाव सुधर्म ।
वहां सहज सत्ताविषैं, थापै थिर तजि भर्म ॥ ८३ ॥
धरम अभाव जु वस्तुमें, बसत सोइ सुन मीत ।
पर-सरूप नहिं होत है, यह दिढ़ करु परतीत ॥ ८४ ॥
जो अभाव ही सरवथा, माने वस्तु समस्त ।
भाव धरमको लोपिके, जो सबमें परशस्त ॥ ८५ ॥
तौ ताके मतकेविषैं, ज्ञान तथा सब वैन ।
अप्रमान सब ही भये, साधै बाधै केन ॥ ८६ ॥
इत्यादिक दूषन लगैं, तातैं हे भवि वृंद ।
वस्तु अनंत धरममई, भाषी श्रीजिनचंद ॥ ८७ ॥
सो सब सातों भंगतैं, साधो भ्रमतम त्यागि ।
अनेकांत रसमें पगो, निज-सरूप अनुरागि ॥ ८८ ॥

(२४)

मनहरण ।

ऐसी परजाय कोऊ नाहीं है जगतमें जो, रागादि विभाव विना भई उतपन है । रागादि विभावक्रिया अफल न होय कहूं, याको फल चारों गतिमाहिं भरमन है ॥ जैसे परमानू रूछ चीकन सुभावहीसों, बंध खंधमाहिं तैसे जानो जग-जन है । जातैं वीतराग आतमीक पर्म धर्म सो तो, बंधफलसों रहित तिहूंकाल धन है ॥ ८९ ॥

(२५)

नाम कर्म आपनै सुभावसों चिदातमाके, सहज सुभावको आच्छाद करि लेत है। नर तिरजंच नेरकौर[1] देवगतिमाहिं, नाना परकार काय सोई निरमेत[2] है॥ जैसे दीप अगनिसुभाव-करि तेलको सु—,भाव दूरकरिके प्रकाशित धरेत है। ज्ञानावरना-दिकर्म जीवको सुभाव घाति, मनुष्यादि परजाय तैसे ही करेत[3] है॥ ९० ॥

(२६)

नामकर्म निश्चै यह जीवको मनुष्य पशु, नारकी सु देव-रूप देहको बनावै है। तहां कर्मरूप उपयोग परिनवै जीव, सहज सुभाव शुद्ध कहूं न लहावै है॥ जैसे जल नीम चंद-नादिमाहिं गयौ सो, प्रदेश और स्वाद निज दोनों न गहावै है। तैसे कर्मभाव परिनयौ जीव अमूरत, चिदानंद वीत-रागभाव नाहिं पावै है॥ ९१ ॥

(२७)

छप्पय।

इमि संसारमँझार, दरवके द्वार जु देखा।
तौ कोऊ नहिं नसत, न उपजत यही विशेखा॥
जो परजै उतपाद होत, सोई वय हो है।
उतपत वयकी दशा, विविध परजयमें सोहै॥

---

१ नरक और। २ निर्माण करता है, बनाता है। ३ करता है।

ध्रुव दरव स्वांग बहु धारिके, गत गतमें नाचत विगत।
परजयअधार निरधार यह, दरव एक निजरस पगत ॥९२

(२८)

तिस कारन संसारमाहिं, थिर दशा न कोई।
अथिररूप परजैसुभाव, चहुंगतिमें होई॥
दरवनिकी संसरन क्रिया, संसार कहावै।
एक दशाको त्यागि, दुतिय जो दशा गहावै॥
या विधि अनादितैं जगतमें, तन धरि चेतन भमत है।
निज चिदानंद चिद्रूपके, ज्ञान भये दुख दमत है॥९३॥

विशेषवर्णन-मनहरण।

ताहीतैं जगतमाहिं ऐसो कोऊ काय नाहिं, जाको अवधारि जीव एक रूप रहैगो। याको तो सुभाव है अथिररूप सदाहीको, ऐसे सरधान धरै मिथ्यामत बहैगो॥ जीवकी अशुद्ध परनतिरूप क्रिया होत, ताको फल देह धारि चारों गति लहैगो। याको नाम संसार बखाने सारथक जिन, जाकी भवथिति घटी सोई सरद[1]हैगो॥ ९४॥

(२९)

अनादितैं पुग्गलीक कर्मसों मलीन जीव, रागादि विकार भाव कर्मको लहत है। ताही परिनामनितैं पुग्गलीक दर्व कर्म, आयके प्रदेशनिसों बंधन गहत है॥ तातैं राग आदिक

१ श्रद्धान करेगा।

विकारभाव भावकर्म, नयो दर्वकरमको कारन कहत है। ऐसो बंधभेद भेदज्ञानतैं विवेद वृंद, साधी है सिद्धांतमाहिं सुगुरु महत है ॥ ९५ ॥

प्रश्न-दोहा।

दरव करमतैं भावमल, भाव करमतैं दव्व।
यामैं पहिले कौन है, मोहि बतावो अव्व ॥ ९६ ॥
इतरेतर आश्रय यहां, आवत दोष प्रसंग।
ताको उत्तर दीजिये, ज्यों होवै भ्रम भंग ॥ ९७ ॥

उत्तर।

उत्तर सुनो! अनादितैं, दरवकरमकरि जीय।
है प्रबंध ताको सुगुरु, कारन पुव्व गहीय ॥ ९८ ॥
ताही पूरववंधकरि, होहि विभाव विकार।
ताकरि नूतन बँधत है, यहाँ न दोष लगार ॥ ९९ ॥
जगदागमहूतैं यही, सिद्ध होत सुखधाम।
जो है करम निमित्त विनु, रागादिक परिनाम ॥ १०० ॥
तो वह सहज सुभाव ह्वै, मिटै न कबहूं येव।
तातैं दरवकरम निमित, प्रथम गही गुरुदेव ॥ १०१ ॥
दरवकरम पुद्गलमई, पुद्गल करता तास।
भावकरम आतम करै, यह निहचै परकास ॥ १०२ ॥

पुनः प्रश्न।

तुम भाषत हौ हे सुगुरु, 'जीवकरमसंजोग'।
सो क्या प्रथम पृथक हुते, पाछे भयो नियोग ॥ १०३ ॥

जासु नाम 'संजोग' है, ताको तो यह अर्थ ।
जुदी वस्तु मिलि एक है, कीजे अर्थ समर्थ ॥ १०४ ॥

उत्तर—मनहरन ।

जैसे तिलीमांहि तैल आगि है पखानमाहिं, छीरमाहिं नीर हेम खानिमें समल है । इन्हें जब कारनतैं जुदे होत देखै तब, जानै जो मिलापहूमें जुदे ही जुगल है ॥ तैसेही अनादि पुग्गलीक दर्व करमसों, जीवको संबंध लसै एक थल रल है । भेदज्ञान आदि शिव साधनतैं न्यारो होत, ऐसे निरवाध संग सधत विमल है ॥ १०५ ॥

मतांतर । दोहा ।

केई मतवाले कहैं, प्रथम अमल थो जीव ।
माया जड़सों मलिन है, चहुँगति भमत सदीव ॥१०६॥
प्रगट असंभव बात यह, शुद्ध अमल चिद्रूप ।
क्योंकरि बंध दशा लहै, परे केम भवकूप ॥ १०७ ॥
विमलभाव तब बंधको, कारन भयो प्रतच्छ ।
मोच्छ अमलता तब कहो, कैसें सधै विलच्छ ॥ १०८ ॥

(३०)

मनहरण ।

परिनामरूप स्वयमेव आप आतमा है, जातैं परिनाम परि-नामीमें न भेद है । सोई परिनामरूप क्रिया जीवमयी होत, आपनी क्रियातैं तनमयता अछेद है ॥ जीवकी जो क्रिया ताको भावकर्म नाम कह्यौ, याको करतार जीव निहचै निवेद

है। तातैं दर्व करमको आतमा अकरता है, याको करतार पुदगल कर्म वेद है ॥ १०९ ॥

प्रश्न-दोहा।

भावकरम आतम करै, यह हम जानी ठीक।
दरवकरम अबको करै, यह संदेह अधीक ॥ ११० ॥

उत्तर-मनहरण।

जैसे भाव कर्मको करैया जीव राजत है, पुग्गल न ताको करै कभी यों पिछानियौ। निज निज भावके दरव सब करता हैं, परके सुभावको न करै कोऊ मानियौ ॥ यह तो प्रतच्छ भेद ज्ञानतैं विलच्छ देखो, सबै निज कारजके करता प्रमानियौ। दरव करम पुदगल पिंड तातैं याको, करतार पुग्गल दरव सरधानियौ ॥ १११ ॥

(३१)

सवैया (३१ मात्रा)

आतम निज चेतनसुभावकरि, प्रनवतु है निहचै निरधार।
सो चेतनता तीन भांति है, यों वरनी जिनचंद उदार ॥
ज्ञानचेतना प्रथम वखानी, दुतिय करमचेतना विचार।
त्रितियकरमफलचेतनता है, वृंदावन ऐसे उद्धार ॥ ११२ ॥

(३२)

मनहरण।

जीवादिक सुपर पदारथको भेदजुत, तदाकार एकै काल जानै जो प्रतच्छ है। सोई ज्ञानचेतना कहावत अमलरूप,

वृंदावन तिहूँकाल विशद विलच्छ है॥ जीवके विभावको अरंभ कर्मचेतना है, दर्वकर्मद्वार जामें भेदनको गच्छ है। सुखदुखरूप कर्मफल अनुभवै जीव, कर्मफलचेतना सो भाषी श्रुति स्वच्छ है॥ ११३॥

(३३)

परिनाम आतमीक आप यह आतमा है, सदा काल एकताई तासों तदाकार है। सोई परिनाम ज्ञान कर्म कर्मफल तीनों, चेतनता होनको समरथ उदार है॥ याही एकताईतैं सुज्ञान कर्म कर्मफल, तीनोंरूप आतमा ही जानो निरधार है। अभेद विवच्छातैं दरवहीके अंतरमें, भेद सर्व लीन होत भाषी गैनधार है॥ ११४॥

(३४)

करता करैन तथा करम करमफल, चारोंरूप आतमा विराजै तिहूंपनमें। ऐसे जिन निहचै कियो है भलीभांतिकरि, एकता सुभाव अनुभवैं आपु मनमें॥ परदर्वरूप न प्रनवै काहू कालमाहिं, लागी है लगन जाकी आतमीक धनमें। सोई मुनि परम धरम शिवसुख लहै, वृंदावन कबहूं न आवै भववनमें॥ ११५॥

१ गणधरदेवने। २ करण।

दोहा।

भेदभाव जेते कहे, तेते वचनविलास।
निरविकलप चिद्रूप है, गुन अनंतकी रास ॥ ११६ ॥
समल अमल दोनों दशा, तामें आतम आप।
चार भेदमय सुथिर है, देखो निजघट व्याप ॥ ११७ ॥
यों जब उर सरधा धरै, तजि परसों अनुराग।
परममोखसुख तब लहै, चिदानंदरस पाग ॥ ११८ ॥

मनहरण।

जैसे लाल फूलके उपाधसों फटिकमाहिं, लालरूप लसत विशाल ताकी छटा है। तैसे ही अनादि पुदगल कर्मबंधके संजोगसों उपज्यौ जीवमाहिं राग ठटा है ॥ जबै उपाधीक रंग संगतैं नियारौ होत, तबै शुद्ध जोति जगै फटै मोहघटा हैं। एक परनत परमानू ज्यों न बँधै त्यों ही, रागादि विभाव विना बंधभाव कटा है ॥ ११९ ॥

छप्पय।

जब यह आतम आप, भेदविज्ञान धार करि।
निज सरूपकों लखै, सकल भ्रमभाव टार करि ॥
करता करम सुकर्म, कर्मफल चारभेदमय।
चिदविलास ही समल, अमल दोउ दशामाहिं हय ॥
इमि जानि तब हि परवस्तुतैं, रागादिक ममता हरै।
निज शुद्ध चेतनाभावमें, सुथिर होय शिवतिय वरै १२०

कवित्त । (३१ मात्रा)

इहि प्रकार निरदोष बतायो, शिवपुरको मग सुखद सदीव ।
ताहि त्यागि जो आन जतनसों, चाहत होन मूढ़ शिवपीव ॥
सो मूरख परधान जगतमें, तास आश विपरीत अतीव ।
जीभ स्वादके कारन सो शठ, पानी मथिके चाहत घीव १२१॥

अधिकारान्तमंगल । मत्तगयन्द ।

श्रीजिनचंद सुखाम्बुधिवर्द्धन, भव्यकुमोदप्रमोदक नीको ।
जन्मजरामृततापविनाशन, शासन है जनके हितहीको ॥
शुद्धपयोग निरोग सु भेषज, पोषनको समरत्थ अधीको ।
सो इत मंगल भूरि भरो प्रभु, वंदत वृंद सदा तुमही को ॥

दोहा ।

बंदों श्रीसरवज्ञपद, भ्रमतमभंजनभान ।
विघनहरन मंगलकरन, देत विमल कल्यान ॥ १२३ ॥
श्रीमत्प्रवचनसारकी, भाषाटीकामाहिं ।
दरवनिको सामान्यतः, कथन समाप्त कराहिं ॥ १२४ ॥

इतिश्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृतपरमागमश्रीप्रवचनसारजी ताकी वृंदावनकृतभाषाविषें दरवनिका सामान्यवर्णनका अधिकार चौथा पूरा भया ।

इहां ताईं सर्व गाथा १२७ एक सौ सत्ताईस भई और भाषाके छंद सर्व ४६२ चारिसौ बासठ भये सो जयवंत होऊ । लिखी **वृन्दावनने** यही प्रथम प्रति है । मंगलमस्तु । श्रीरस्तु । मिती मार्गशीर्षकृष्णा १३ ॥ गुरुवार संवत् १९०५ ॥ काशीजीमें, निज परोपकारार्थ । भूल चूक विशेषीजन शोधि शुद्ध कीजो ॥

अथ पञ्चमोविशेषज्ञेयतत्त्वाधिकारः ।

मंगलाचरण-दोहा ।

वंदों आतम जो त्रिविध, वर्जित कर्मविकार ।
नेत भेत ज्ञातृत्व जुत, सब विधि मंगलकार ॥ १ ॥
अब विशेषता दरवका, कथनरूप अधिकार ।
श्रीगुरु करत अरंभ सो, जैवंतो सुखकार ॥ २ ॥

(१)

मनहरण ।

सत्तारूप दर्व दोय भांति है अनादि सिद्ध, जीव औ अजीव यही साधी श्रुति मंथ है । तामें जीव लच्छन विलच्छन है चेतनता, जासको प्रकाश अविनाशी पूज पंथ है ॥ ताहीको प्रवाह ज्ञान दर्शनोपयोग दोय, सामान्य विशेष वस्तु जानिवेतैं कंथ है । पुग्गलप्रमुख दर्व अजीव अचेतन हैं, ऐसे वृंद भाषी कुंदकुंद निरगंथ है ॥ ३ ॥

(२)

छप्पय ।

जो नभको परदेश जीव, पुदगल समेत है ।
धर्माधर्म सु अस्तिकाय,-को जो निकेत है ॥
कालानूजुत पंच दरव, परिपूरन जामें ।
सोई लोकाकाश जानु, संशय नहिं यामें ॥
सब कालमाहिं सो अचल है, अवगाहन गुनको धरैं ।
तसु परे अलोकाकाश जहँ, पंच रंच नहिं संचरैं ॥ ४ ॥

(३)

दोहा ।

पुदगल अरु जीवातमक, जो यह लोकाकाश ।
ताके थिति उतपाद वय, परनति होत प्रकाश ॥ ५ ॥
भेद तथा संघाततैं, ज्यों श्रुति करत बखान ।
ताको उर सरधा धरो, त्यागो कुमत–वितान ॥ ६ ॥

मनहरण ।

क्रियावंत भाववंत ऐसे दोय भेदनितैं, दर्वनिमें भेद दोय भाषी भगवंत है। मिलि विछुरन हलचलन क्रिया है औ, सुभाव परनति गहै सोई भाववंत है ॥ जीव पुदगलमाहिं दोनों पद पाइयत, धर्माधर्म काल नभ भाव ही गहत है। धन्य धन्य केवलीके ज्ञानको प्रकाश वृंद, एकै वार सर्व सदा जामें झलकंत है ॥ ७ ॥

(४)

मनहरण ।

जीवाजीव दर्व जिन चिह्ननितैं भलिभांति, चीह्ने जाने जाहिं सोई लच्छन बखाना है। सो है वह दर्वके सरूपकी विशेषताई, जुदो कछु वस्तु नाहिं ऐसे परमाना है। मूरतीक दरवको लच्छन हू मूरतीक, अमूरतिवंतनिको अमूरत बाना है। लच्छके जनायवेतैं लच्छन कहावै वृंद, प्रदेशतैं एकमेक सिद्ध ठहराना है ॥ ८ ॥

लक्षण यथा—दोहा ।

मिली परस्पर वस्तुको, जाकरि लखिये भिन्न ।
लच्छन ताहीको कहत, न्यायमती परविन्न[1] ॥ ९ ॥
जो सुकीय नित दरवके, है अधार निरबाध ।
सोई गुन कहलावई, वर्जित दोष उपाध ॥ १० ॥
तेई दरवनिके सुगुन, लच्छन नाम कहाहिं ।
जातैं तिनकरि जानिये, लच्छ दरव सब ठाहिं ॥ ११ ॥
भेद विवच्छातैं कहे, गुनी सुगुनमें भेद ।
वस्तु विचारत एक है, ज्ञानी लखत अखेद ॥ १२ ॥

(५)

छप्पय ।

मूरतीक गुनगन इंद्रिनिके, गहन जोग है ।
सो वह पुग्गल दरवमई, निहचै प्रयोग है ॥
वरन गंध रस फांस, आदि बहु भेद तासके ।
अब सुनि भेद अमूरत, दरवनिके प्रकाशके ॥
जो दरव अमूरतवंत है, तासु अमूरत गुन लसत ।
सो ज्ञान अतिंद्रीके विषैं, प्रतिबिंबित जुगपत बसत ॥ १३ ॥

(६)

मत्तगयन्द ।

पुग्गलदर्वविषैं गुन चार, सदा निरधार विराजि रहे हैं ।
वर्न तथा रस गंध सपर्स[2], सुभाविक संग अभंग लहे हैं ॥

---

१ प्रवीण-चतुर । २ स्पर्श ।

पैर्मअनू अति सूच्छिमतैं, पृथिवी परजंत समस्त गहे हैं ।
और जु शब्द सो पुग्गलकी, परजाय विचित्त अनित्त कहे हैं ॥

षट्प्रकार पुद्गलवर्णन—दोहा ।

षटप्रकार पुदगल कहे, सुनो तासुके भेद ।
जथा भनी सिद्धांतमें, संशयभाव विछेद ॥ १५ ॥
सूच्छिम सूच्छिम प्रथम है, **सूच्छिम** दूजो भेद ।
सूक्ष्मथूल तीजो कह्यौ, **थूलसूक्ष्म** है वेदे ॥ १६ ॥
थूल पंचमों जानियै, **थूलथूल** षट एम ।
अब इनको लच्छन सुनो, श्रुति मथि भाषत जेम ॥१७॥

मनहरण ।

प्रथम विभेद परमानू परमान मान, कारमानवर्गना **दुतीय** सरधान है । नैन नाहिं गहैं चार इंद्री जाहि गहैं सोई, **तीजो** भेद विषैंके विवशतैं निदान है । **चौथो** भेद नैनतैं निहारियै जु छायादि सो, हस्तादिसों नाहिं गह्यौ जात परमान है । **पांचमो** विभेद जल तेल मिलै छेदै भेदै, **छठो** भूमि भूधरादि संधि न मिलान है ॥ १८ ॥

वर्णभेद—दोहा ।

अरुन पीत कारो हरो, सेत वरन ये पंच ।
इनके अंतरके विषैं, भेद अनंते संच ॥ १९ ॥

रसभेद ।

खाटा मीठा चिरपिरा, करुआ और कषाय ।
पांच भेद रसके कहे, तासु भेद बहु भाय ॥ २० ॥

१ परमाणु । २ चौथा ।

गंधभेद।

गंध दोय परकार है, प्रथम सुगंध पुनीत।
दुतिय भेद दुरगंध है, यों समुझो उर मीत ॥ २१ ॥

स्पर्शभेद।

तपत शीत हरुवो गरू, नरम कठोर कहाय।
रुच्छ चीकनो फरसके, आठ भेद दरसाय ॥ २२ ॥

प्रश्न—चौपाई।

पुदगलके गुन वरने जिते। इंद्रीगम्य कहे तुम तिते ॥
तहां होत शंका मनमाहिं। सुनिये कहों वेदकी छाहिं ॥२३॥
परमानू अति सूच्छिम भना। कारमानकी पुनि वरगना ॥
तिनहूमें चारों गुन बसैं। क्यों नहिं इंद्री ग्राहै तिसै ॥ २४ ॥

उत्तर—कवित्त (३१ मात्रा)।

परमानू आदिक पुदगलको, इंद्रीगम्य कहे इस हेत।
जब वह खंध बंधमें ऐहै, शक्त व्यक्त करि सुगुन समेत।
तब सो इंद्रीगम्य होइगो, व्यक्तरूप यों लखो सचेत।
इंद्रिनिके हैं विषय तासु गुन, तिसी अपेच्छा कथन कथेत २५

पुनः प्रश्न—दोहा।

पुदगल मूरतिवंत जिमि, तिमि व्है शब्द प्रतीत।
तौ पुदगलको गुन कहौ, परज कहौ मति मीत ॥ २६ ॥

उत्तर—

गुनको लच्छन नित्त है, परज अनित्त प्रतच्छ।
गुन होते तित शबद नित, होवो करतो दच्छ ॥ २७ ॥

जो होतौ गुन तौ सुनो, अनू आदिके माहिं ।
सदा शबद उपजत रहत, सो तौ लखियत नाहिं ॥ २८ ॥
खंधनिके व्याघाततैं, होत शबद परजाय ।
प्रथम भेद भाषामई, दुतिय अभाषा गाय ॥ २९ ॥

मनहरण ।

केई मतवाले कहैं शब्द गुन अकाशको, तासों स्यादवादी कहै यह तो असंभौ है । आकाश अमूरतीक इंद्रिनिके गम्य नाहिं, शब्द तो श्रवणसेती होत उपालंभौ है । कारन अमूरतको कारजहू तैसो होत, यह तो सिद्धांत बृंद ज्यों सुमेरु थंभौ है । सर्व ही अकाशतैं शबद सदा चाहियत, गुनी गुन तजे कैसे बड़ो ही अचंभौ है ॥ ३० ॥

दोहा ।

तातैं शबद प्रतच्छ है, पुदगलको परजाय ।
खंध जोगतैं ऊपजत, वरन अवरन सुभाय ॥ ३१ ॥

प्रश्न—

पुदगलकी परजाय तुम, शबद कही सो ठीक ।
श्रवन हि ताकों गहत है, यही सनातन लीक ॥ ३२ ॥
और चार इंद्रीनिकरि, क्यों नहिं लखियै ताहि ।
मूरतीक तौ सब गहैं; याको करो निबाह ॥ ३३ ॥

उत्तर—

पांचो इंद्रिनिके विषय, जुदे कहे श्रुतिमाहिं ।
तहां न ऐसो नेम की, सब सब विषय गहाहिं ॥ ३४ ॥

नेम यही जानो प्रगट, निज निज विषयनि अच्छ ।
गहन करहिं नहिं अपरके, विषय गहहिं परतच्छ ॥ ३५ ॥
ताहीतैं वह श्रवनको, शवद विषय दिढ़ जान ।
श्रवन हि ताकों गहत है, और न गहत निदान ॥ ३६ ॥

प्रश्न-छप्पय ।

इहां प्रश्न कोउ करत, गंध गुन नीरमाहिं नहिं ।
ताहीतैं नाशिका नाहिं, संग्रहत तासुकहिं ॥
अगनि गंध रस रहित, घ्रान रसना नहिं गाहै ।
पौनमें न दरसात, गंध रस रूप कहां है ॥
ताहीतैं नाक-नयन-रसन, मारुतको नहिं गहि सकत ।
गुन होत गहहि निज निज विषय, यही अच्छकी रीति अत ॥

उत्तर-दोहा ।

पुदगल दरव धरै सदा, फरस रूप रस गंध ।
सब परजायनिकेविषैं, परमानू लगि खंध ॥ ३८ ॥
कहूं कोउ गुन मुख्य है, कहूं कोउ गुन गौन ।
चारमाहिं कमती नहीं, यह निहचै चिंतौन ॥ ३९ ॥
एक परजमें जे अनू, प्रनईं हैं परधान ।
दुतिय रूप सो परिनवहिं, देखत दृष्टि प्रमान ॥ ४० ॥
वरनौंतैं वरनांतर, रसतैं पुनि रस और ।
इत्यादिक प्रनवत रहत, जथाजोग सब ठौर ॥ ४१ ॥

छप्पय ।

चंद्रकांत पाषानकाय, पृथिवी पृथिवीतल ।
श्रवत तासुतैं अंबु, गंधगुनरहित सुशीतल ॥

लखो वारितैं होत काय, पुहमी मुकताफल ।
अरणि दारुतैं अनल होत, जलतैं सु वायुबल ॥
इत्यादि अनेक प्रकारको, प्रनवन बहुत विधान है ।
तातैं सब परजैकेविषैं, चारों गुन परधान है ॥ ४२ ॥

दोहा ।

तातैं पृथ्वी आदिके, पुदगलमें नहिं भेद ।
प्रनवनमाहिं विभेद है, यों गुरु करी निवेद ॥ ४३ ॥
सबहीमें फरसादि गुन, चारों हैं निरधार ।
वृंदावन सरधा धरो, सब संशय परिहार ॥ ४४ ॥

(७-८)

मनहरण ।

एकै काल सरव दरवनिको थान दान, कारन विशेष गुन राजत अकासमें। धरम दरवको गमन हेत कारन है, जीव पुदगलके विचरन विलासमें ॥ अधरम दर्वको विशेष गुन थिति हेत, दोनों क्रियावंतनिके थित परकासमें । काल-को सुभाव गुन वरतनाहेत कह्यौ, आतमाको गुन उपयोग प्रतिभासमें ॥ ४५ ॥

दोहा ।

ऐसे मूरतिरहितके, गुन संक्षेप भनंत ।
वृंदावन तामें सदा, हैं गुन और अनंत ॥ ४६ ॥
जो गुन जासु सुभाव है, सो गुन ताहीमाहिं ।
औरनिके गुन औरमें, कबहूं व्यापैं नाहिं ॥ ४७ ॥

नभको तो उपकार है, पांचोंपर सुन मीत।
धर्माधर्मनिको लसै, जिय पुद्गलसों रीत ॥ ४८ ॥
काल सबनिपै करतु है, निज गुनतैं उपकार।
नव जीरन परिनमनको, यातैं होत विचार ॥ ४९ ॥
जीव लखै जुगपत सकल, केवलदृष्टि पसार।
याहीतैं सब वस्तुको, होत ज्ञान अविकार ॥ ५० ॥

(९)

जीवरु पुद्गल काय नभ, धरम अधरम तथेस।
हैं असंख परदेशजुत, कालरहित परदेस ॥ ५१ ॥

मनहरण।

एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, संकोच विथार जथा दीपकपै ढपना। पुग्गल प्रमान एक अप्रदेशी है तथापि, मिलन शकतिसों बढ़ावै वंश अपना ॥ धर्माधर्म अखंड असंख परदेशी नभ, सर्वगत अनंत प्रदेशी वृंद जपना। कालानूमें मिलन शकतिको अभाव तातैं, अप्रदेशी ऐसे जानैं मिटै ताप तपना ॥ ५२ ॥

(१०)

लोक औ अलोकमें अकाश ही दरव और, धर्माधर्म जहां लगु पूरित सो लोक है। ताहीविषैं जीव पुदगलको प्रतीत करो, कालकी असंख जुदी अनूको थोक है ॥ समयादि परजाय जीव पुदगलहीके, परिनामनिसों परगटत सुतोक है।

काजरकी रेनुकरि भरी कजरौटी जथा, तथा वृंद लोकमें विराजै दर्वथोक है ॥ ५३ ॥

दोहा ।

धर्माधर्म दरव दोऊ, गति थितिके सहकार ।
ये दोनों जहँ लगु सोई, लोकसीम निरधार ॥ ५४ ॥

(११)

दोहा ।

ज्यों नभके परदेश हैं, त्यों औरनिके मान ।
अपदेशी परमानु ते, होत प्रदेश प्रमान ॥ ५५ ॥

मनहरण ।

एक परमानूके बरावर अकाश छेत्र, ताहीको प्रदेश नाम ज्ञानी सिद्ध करी है । परमानु आप अपदेशी है सुभावही-तैं, सूछिम न यातैं और ऐसी दिढ़तरी है ॥ ताही परदेश-तैं अनंत परदेशी नभ, धर्माधर्म एक जीव असंख प्रसरी है । ऐसे परदेशको प्रमान औ विधान कह्यौ, स्वामी कुंदकुंद वृंद बंदै मोह भरी है ॥ ५६ ॥

प्रश्न-दोहा ।

नभ पुनि धर्माधर्मके, कहे प्रदेश जितेक ।
सो तो हम सरधा करी, ये अखंड थिर टेक ॥ ५७ ॥
जीव अमूरत तन धरै, तासु असंख प्रदेस ।
सो कैसेकरि संभवै, लघु दीरघ जसु भेस ॥ ५८ ॥

उत्तर ।

संकोचन अरु विस्तरन, दोइ शकति जियमाहिं ।
जहँ जैसे तनको धरै, तहँ तैसो है जाहि ॥ ५९ ॥
ज्यों दीपक परदेशकरि, जो कछु धरत प्रमान ।
लघु दीरघ ढकना ढकैं, तजत न अपनो बान ॥ ६० ॥
बालक वयतैं तरुन जब, होत प्रगट यह देह ।
बढ़त प्रदेश समेत तन, यामें कह संदेह ॥ ६१ ॥
थूल अंग रुज संगतैं, जासु कृशित ह्वै जात ।
तहँ प्रदेश संकोचता, विदित विलोको भ्रात ॥ ६२ ॥

(१२)

मनहरण ।

कालानू दरव अप्रदेशी है असंख अनू, मिलन सुभावके सरवथा अभावतैं । सो प्रदेश मात्र पुग्गलानूके निमित्तसेती, सभे पर्ज प्रगटिकै वर्तत वतावतैं । आकाशके एक परदेश-तैं दुतीयपर, जबै पुग्गलानु चलै मंदगति दावतैं । ऐसे निश्चै विवहारकालको सरूप भेद, ज्ञानी जीव जानिके प्रतीत चित लावते ॥ ६३ ॥

दोहा ।

लोकाकाश प्रदेश प्रति, कालानू परिपूर ।
हैं असंख निरबाध नित, मिलन शकतितैं दूर ॥ ६४ ॥
ताही एक प्रदेशतैं, जब पुदगल परमानु ।
चलै मंदगति दुतियपर, तब सो समय बखान ॥ ६५ ॥

याही समय प्रमानकरि, है ध्रुव वय उतपाद ।
वरतमान सब दरवमें, विवहारिक मरजाद ॥ ६६ ॥

(१३)

मनहरण ।

एक कालअनूतैं दुतीय कालअनूपर, जात जबै पुग्गलानु मंदगति करिकै । तामें जो विलंब होत सोई काल दरवको, समै नाम परजाय जानो भर्म हरिकै ॥ ताके पुव्व परे जो पदारथ हैं नित्तभूत, सोई काल दरव है ध्रौव धर्म धरिकै ॥ समय परजाय उतपाद वयरूप कहे, ऐसे सरधान करो शंका परिहरिकै ॥ ६७ ॥

दोहा ।

जो अखंड ब्रहमंडवत, काल दरवहू होत ।
समय नाम परजाय तब, कबहुं न होत उदोत ॥ ६८ ॥
भिन्न भिन्न कालानु जब, अमिल सु....भी होय ।
गनितरीतिगत कर्ममें, तब ही बनै बनोय ॥ ६९ ॥
इक कालानू छांड़िकै, जब दुतीयपर जात ।
पुग्गलानु गति मंद करि, तब सो समय कहात ॥ ७० ॥
सो निरंश अति सूक्ष्म है, काल दरवकी पर्जे ।
याहीतैं क्रम चढ़ि बढ़त, सागरांत लगु सर्जे ॥ ७१ ॥

प्रश्न-

पुग्गलानु गति शीघ्र करि, चौदहराजू जात ।
समय एकमें हे सुगुरु, यह तो बात विख्यात ॥ ७२ ॥

तहां सपरसत कालकें, अनु असंख मगमाहिं ।
याहूमें शंका नहीं, श्रेणीबद्ध रहाहिं ॥ ७३ ॥
पुव्वापरके भेदतैं, समयमाहिं तित भेद ।
असंख्यात क्यों नहि कहत, यामें कहा निषेद ॥ ७४ ॥

उत्तर—

जिमि प्रदेश आकाशको, परमानू परमान ।
अति सूच्छिम निरअंश है, मापन गज परधान ॥ ७५ ॥
ताहीमें नित बसत है, अनु अनंतको खंध ।
अंश अनंत न होत तसु, लहि तिनको सनबंध ॥ ७६ ॥
यह अवगाहन शकतिकी, है विशेषता रीत ।
तिमि तित गति परिनामकी, है विचित्रता मीत ॥ ७७ ॥
समय निरंश सरूप है, वीजभूत मरजाद ।
सरव दरव परवरतई, ध्रुव वय पुनि उतपाद ॥ ७८ ॥

(१४)

मनहरण ।

एक पुग्गलानु अविभागी जिते आकाशमें, बैठे सोई अकाशको प्रदेश बखान है । ताही परदेशमाहिं और पंच द्रव्यनिके, प्रदेशको थान दान देइबेको बान है ॥ तथा पर्म सूच्छिम प्रमानके अनंत खंध, तेऊ ताही थानमें विराजैं थिति ठान है । निराबाध सर्व निज निज गुन पर्ज लिये, ऐसी अवगाहनकी शकति प्रधान है ॥ ७९ ॥

प्रश्न-छन्द नराच ।

अकाश दर्व तो अखंड एकरूप राजई ।
सु तासुमें प्रदेश अंशभेद क्यों विराजई ॥
अखंड वस्तुमाहिं अंशकल्पना बनै नहीं ।
करै सुशिष्य प्रश्न ताहि श्रीगुरू कहैं यही ॥ ८० ॥

उत्तर-दोहा ।

निरविभाग इक वस्तुमें, अंश कल्पना होय ।
नय विवहार अधारतैं, लगै न बाधा कोय ॥ ८१ ॥
निजकरकी दो आंगुरी, नभमें देखि उठाव ।
क्षेत्र दोउको एक है, कै दो जुदे बताव ॥ ८२ ॥
जो कहि है की एक है, तो कहु कौन अपेच्छ ।
एक अखंड अकाशकी, कै अंशनिके सेच्छ ॥ ८३ ॥
जो कहि है नभपच्छ गहि, तब तौ सांची बात ।
जो अंशनिकरि एक कहि, तब विरोध दरसात ॥ ८४ ॥
इक अंगुरीके छेत्रसों, दूजेसों नहि मेल ।
अंश अपेच्छा इक कहैं, यह लॅरिकनिको[1] खेल ॥ ८५ ॥
जुदे जुदे जो अंश कहि, नभ अखंडता त्याग ।
तौ प्रति अंश असंख नभ, चहियत तितौ विभाग ॥ ८६
तातैं नय विवहारतैं, अंश कथा उर आन ।
कारज विदित विलोकिकै, जिन आगम परमान ॥ ८७ ॥

---

१ बालकोंका ।

(१५)

मनहरण।

काल विना बाकी पंच दर्वनिके परदेश, ऐसे जैनवैनसों प्रतीति कीजियतु है। एक तथा द्वेय वा अनेक विधि संख्या लियैं, अथवा असंख तक चित दीजियतु है॥ ताके आगे अनंत प्रदेश लगु भेद बृंद, जथाजोग सबमें विचार लीजियतु है। काल दर्व एक ही प्रदेशमात्र राजतु है, ऐसो सरधान सुद्ध सुधा पीजियतु है॥ ८८॥

अकाशके अनंत प्रदेश हैं अचल तैसे, धर्माधर्म दोऊके असंख थिर थपा है। एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, सो तो घटैं बढ़ैं जथा देह ढापैं ढपा है॥ एक पुग्गलानु है प्रदेश मात्र दर्व तऊ, मिलन सुभावसों बढ़ावै वंश अपा[1] है। संख्यासंख्य अनंत विभेद लगु ऐसें पंच, दर्वके प्रदेशको अनादि नाप नपा है॥ ८९॥

दोहा।

जिनके बहुत प्रदेश हैं, तिर्यकप्रचई सोय।
सो पांचों ही दरवमें, व्यापत हैं भ्रम खोय॥ ९०॥
कालानूमें मिलनकी, शकति नाहिं तिस हेत।
तिर्यक परचैके[2] विषैं, गनती नाहिं करेत॥ ९१॥
समयनिके समुदायको, ऊरधपरचै[3] नाम।
सो यह सब दरवनिविषैं, व्यापत है अभिराम॥ ९२॥

---

१ अपना। २ प्रचय-समूह। ३ ऊर्ध्वप्रचय।

काल दरवके निमिततैं, ऊरधपरचै होत ।
ताहीतैं सब दरवको, परनत होत उदोत ॥ ९३ ॥
पंचनिके ऊरधप्रचय, काल दरवतैं जानु ।
कालमाहिं ऊरधप्रचय, निजाधार परमानु ॥ ९४ ॥
तीरक[1]-परचै पांचमें, निजप्रदेश सरवंग ।
निजाधीन धारै सदा, जथाजोग बहुरंग ॥ ९५ ॥

(१६)

माधवी ।

जिस काल समैकहँ एक समै,–
महँ वै उतपाद विराजि रहा है ।
तब हू वह आपु सुभावविषैं,
समवस्थित है ध्रुवरूप गहा है ॥
परजाय समै उपजै विनशै,
अनु पुग्गलकी गति रीति जेहा[2] है ।
यह लच्छन काल पदारथको,
सुविलच्छन श्रीगुरुदेव कहा है ॥ ९६ ॥

दोहा ।

कालदरवको क्यों कहो, उपजनविनशनरूप ।
समय परजहीकों कहो, वयउतपादसरूप ॥ ९७ ॥
ध्रौव दरवको छांड़िके, एकै समयमँझार ।
उतपत ध्रुव वय सधत नहिं, कीजै कोट विचार ॥९८॥

---

१ तिर्यक् प्रचय । २ यथा ।

उतपत अरु वयके विषैं, राजत विदित विरोध।
अंधकार परकाशवत, देखो निज घट शोध ॥ ९९ ॥
तातैं कालानू दरव, भौव गहोगे जत्र ॥
निराबाध एकै समय, तीनों सधि हैं तत्र ॥ १०० ॥

छप्पय।

जब पुग्गल परमानु, पुव्वकालानु त्याग करि।
अगिलीपर वह गमन करत, गति मंद तासु धरि ॥
समय कहावत सोय, तहां आधार दरव गहु।
तब तीनों निरवाध सधैं, इक समयमाहिं बहु ॥
लखि निजकर अंगुरी वक्र करि, एक समय तीनों दिखैं।
उतपाद वक्र वय सरलता, ध्रुव अँगुरी दोनों विखैं॥१०१॥

(१७)

मनहरण।

एकही समैमें उतपाद ध्रुव वय नाम, ऐसे तीनों अर्थनिको काल दर्व धारै है। निश्चैकरि यही सदभावरूप सत्ता लिये, निजाधीन निराबाध वर्तत उचारै है ॥ जैसे एक समैमें त्रिभेदरूप राजत है, तैसे सर्वकाल सर्व कालानू पसारै है। समै परजाय उतपाद वयरूप राजै, दर्वकी अपेच्छा ध्रुव धरम उदारै है ॥ १०२ ॥

(१८)

वस्तुको सरूप असतित्वको निवासभूत, सत्ता रसकूपको अधार परदेस है। ऐसो परदेस जाके येकौ नाहिं पाइये

तौ, विना परदेस कहो कैसो ताको भेस है ॥ सो तो परतच्छ ही अवस्तु शून्यरूप भयौ, कैसेकरि जाने ताके सामान्य विशेस है । अस्तिरूप वस्तुहीके होत उतपाद वय, गुन परजायमाहिं ऐसो उपदेस है ॥ १०३ ॥

दोहा ।

जो प्रदेशतैं रहित है, सो तो भयो अवस्त ।
ताके ध्रुव उतपाद वय, लोपित होत समस्त ॥ १०४ ॥
तातैं काल दरव गहो, अनुप्रदेश परमान ।
तब तामें तीनों सधैं, निराबाध परधान ॥ १०५ ॥

मनहरण ।

केई कहैं समय परजायहीको दर्व कहो, प्रदेशप्रमान कालअनू कहा करसै । समै ही अनादितैं निरंतर अनेक अंश, परजायसेती उतपाद—पद परसै ॥ तामें पुव्वको विनाश उत्तरको उतपाद, पर्जेपरंपरा सोई ध्रौव धारा वरसै । ऐसे तीनों भेद भले सधे परजायहीमें, तासों स्यादवादी कहै यामें दोष दरसै ॥ १०६ ॥

गीता ।

जिस समयका है नाश तिसका, तो सरवथा नाश है ।
जिस समयका उतपाद सो, भी स्वैतह¹ विनशत जात है ।
ध्रुव कौन इनमें है जिसे, आधार धरि होवैं यही ।
यों कहत छिनछायी दरवमें, दोष लागैगो सही ॥ १०७ ॥

---

१ स्वतः—स्वयम् ।

दोहा ।

तातैं कालानू दरव, प्रौव गहोगे जब्ब ।
निराबाध एकै समय, तीनों सधि हैं तब्ब ॥ १०८ ॥

मदावलिप्तकपोल ।

काल दरवमें जो प्रदेशको थापन कीना ।
तो असंख कालानु, भिन्न मति कहो प्रवीना ॥
कहो अखंडप्रदेश, लोकपरमान तासुकहँ ।
ताहीतैं उतपन्न समय, परजाय कहो तहँ ॥ १०९ ॥

मनहरण ।

कालको अखंड मानें समय नांहिं सिद्ध होत, समय परजाय तो तब ही उपजत है । जबै कालअनू भिन्न भिन्न होंहिं सुभावतैं, तहां पुग्गलानू जब चलै मंदगत है ॥ एकको उलंघि जब दूजे कालअनूपर, तामें जो विलंब लगै सोई समै जत है । अखंडप्रदेशी मानैं कैसे गतिरीति गनै, कैसे करै कालको प्रमान कहु सत है ॥ ११० ॥

दोहा ।

तातैं कालानू दरव, भिन्न गहोगे जब्ब ।
निराबाध एकै समय, तीनों सधि हैं तब्ब ॥ १११ ॥
काल अखंडित मानतैं, समयभेद मिटि जाय ।
तथा सरव परदेशतैं, जगै समय परजाय ॥ ११२ ॥
तथा कालके है नहीं, तिर्यक-परचै रूप ।
एक यहू दूषन लगै, यों भाषी जिनभूप ॥ ११३ ॥

काल असंख अनून्हको, सुनो वरतना भेद।
प्रथमहिं एक प्रदेशतैं, बरततु है निरखेद॥ ११४॥
पुनि तसु आगेकी अनू, तिनसों वर्तत सोय।
पुनि तसु आगे और सो, वर्तत है अनु जोय॥ ११५॥
असंख्यात अनु-रूपकरि, ऐसे वरतत नित्त।
काल दरवकी वरतना, यों जिन भाषी मित्त॥ ११६॥
याके ऊरध ऊरधै, होहि समय परजाय।
सब दरवनिपर करत है, वर्त्तनमाहिं सहाय॥ ११७॥

कवित्त (३१ मात्रा)

तातैं तत्त्वारथके मरमी, तिनको प्रथमहिं यह उपदेश॥
कालदरव परदेशमात्र है, ध्रौवप्रमान रूप तसु भेश॥
नित्तभूत निरबाध असंखा, अनु अनमिलन सुभाव हमेश।
ताहीकी परजाय समय है, यों भाषी सरवज्ञ जिनेश॥११८॥

दोहा।

मंगलमूल जिनिंदको, वंदों वारंवार।
जसु प्रसाद पूरन भयो, बड़ो ज्ञेयअधिकार॥ ११९॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजी ताकी वृन्दावनकृतभाषाविषैं विशेषज्ञेयाधिकार नामा पांचमा अधिकार पूरा भया।

इहां ताईं सर्वगाथा १४६ और भाषाके छंद सर्व ५८१ पांचसौ इक्यासी भये० सो समस्त जयवंत होहु। मिती मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी ६ शुक्रवारे संवत् १९०५। काशीजीमें वृंदावनने लिखी मूल प्रति। सो जयवंत होहु।

ओं नमः सिद्धेभ्यः

अथ षष्ठ ज्ञेयतत्वान्तर्गत—व्यावहारिक-जीवद्रव्याधिकारः।

मंगलाचरण।

दोहा।

श्रीमत तीरथनाथ नमि, सुमरि सारदा संत[1]।
जीवदरवको लिखत हों, विवहारिक विरतंत॥ १॥

(१)

मनहरण।

सहित प्रदेश सर्व दर्व जामें पूरि रहें, ऐसो जो अकाश सो तो अनादि अनंत है। नित्त[2] नूतन निराबाध अकृत अमिट अनरच्छित सुभाव सिद्ध सर्वगतिवंत है॥ तिस षटदर्वजुत लोकको जो जानत है, सोई जीवदर्व जानो चेतनामहंत है। वही चार प्रानजुत जगतमें राजै वृंद, अनादि संबंध पुद्गलको धरंत है॥ २॥

दोहा।

पंच दरव सब ज्ञेय हैं, ज्ञाता आतमराम।
सो अनादि चहु प्रान जुत, जगमें कियो मुकाम[3]॥ ३॥

(२)

इन्द्रीबल तिमि आयु पुनि, सासउसासरु प्रान।
जीवनिके संसारमें, होहिं सदीव प्रमान॥ ४॥

---

१ साधु—मुनि। २ नित्य—अविनाशी। ३ स्थिति।

छप्पय ।

फास जीभ नासिका, नैन श्रुति पंच अच्छ गहु ।
काय वचन मन सु बल, तीन परतीति मान यहु ॥
आयु चार गति थिति, तथैव सासोउसास गनि ।
ये दशहूं विवहार-प्रान, जग जीवनिके भनि ॥
निहचैकरि सुख सत्ता तथा, अवबोधन चैतन्नता ।
यह चार प्रान धारैं सदा, सहज सुभाव अभिन्नता ॥ ५ ॥

(३)

मत्तगयन्द ।

जो जगमें निहचै करिके, धरि चार प्रकारके प्रान प्रधानो ।
जीवतु है पुनि जीवत थौ, अरु आगे हु पै वही जीवै निदानो ॥
सो वह जीव पदारथ है, चिनमूरति आनंदकंद सयानो ।
औ चहुं प्रान कहे वह तो, उपजे सब पुग्गलतैं परमानो ॥६॥

(४)

मनहरण ।

अनादितैं पुग्गल प्रसंगसों चिदंगजूके, चढ़यो है कुढंग मोह रंग सरवंग है । ताही कर्मबंधसों निबद्ध चार प्रान-निसों, कर्मनिको उदैफल भोगै बहुरंग है ॥ तहां और नूतन करमको प्रबंध बधै, जातैं मोह रागादि कुभावको तरंग है । ऐसे पुग्गलीक कर्म उदै जगजीवनिके, पुग्गलीक कर्मबंध उदैको प्रसंग है ॥ ७ ॥

---

१ स्पर्श । २ अक्ष-इन्द्रियां । ३ चउ-चार ।

दोहा।

कारनके सादृश जगत, कारज होत प्रमान।
तातैं पुद्गल करमकरि, पुद्गल बँधत निदान ॥ ८ ॥

(५)

द्रुमिला।

जगजीव निरंतर मोहरु दोष, कुभाव विकारनिको करिकै।
परजीवनिके चहु प्राननिको, विनिपात[1] करैं अदया[2] धरिकै ॥
तबही निहचै दृढ़ कर्मनिसों, प्रतिबंधित होहिं मुधा भरिकै।
जसु भेद हैं ज्ञान-अवर्नको[3] आदिक, यों लखिये भ्रमको हरिकै॥९॥

दोहा।

मोहादिककरि आपनो, करत अमलगुन घात।
ता पीछे परप्रानको, करत मूढ़ विनिपात ॥ १० ॥
परप्राननिको घात तौ, होहु तथा मति होहु।
पै निज ज्ञान-प्रान तिन, निहचै घाते सोहु ॥ ११ ॥
तब ज्ञानावरनादि तहँ, बँधैं करम दिढ़ आय।
प्रकृति प्रदेशनुभाग थिति; जथाजोग समुदाय ॥ १२ ॥

(६)

मत्तगयन्द।

कर्म महामलसों जगमें, जगजीव मलीन रहै तब ताईं।
चार प्रकारके प्राननिको, वह धारत बार हि बार तहांई ॥

---

१ घात-नाश। २ निर्दयता-कठोरता। ३ ज्ञानावरणादि।

जावत देह प्रधानविषैं, ममता-मतिको नहिं त्याग कराई।
या विधि बंधविधान कथा, गुरुदेव जथारथ वृंद बताई ॥१३॥

दोहा।

जावत ममता भाव है, देहादिककेमाहिं।
तावत चार सुप्रान धरि, जगतमाहिं भरमाहिं ॥ १४ ॥
तातैं ममताभावको, करो सरवथा त्याग।
निज समतारसरंगमें, वृंदावन अनुराग ॥ १५ ॥

(७)

मतगयन्द।

जो भवि इंद्रियआदि विजैकरि, ध्यावत शुद्धपयोग अभंगा।
कर्मनिसों तजि राग रहै, निरलेप जथा जल कंज प्रसंगा ॥
झांक-विहीन जथा फटिकप्रभ, त्यों उर जोतकी वृंद तरंगा।
क्यों मल प्रान बंधै वह तो, नित न्हात विशुद्ध-सुभाविक-गंगा॥

माधवी।

अपने असतित्व सुभावविषैं, नित निश्चलरूप पदारथ जो है।
चिनमूरत आप अमूरत जीव, असंख प्रदेश धरै वह तो है॥
तिसके पर पुग्गलके परसंगतैं, सो परजाय अनेकनि हो है।
जसु संहननौर अकार अनेक, प्रकार विभेद सुवेद भनो है॥१७

---

१ यावत्—जब तक। २ तावत्—तब तक। ३ कमल।
४ छायारहित। ५ संहनन+और।

(८)

मनहरण ।

संसार अवस्थामाहिं जीवनिके निश्चैकरि, पुग्गलविपाकी नामकर्म उदै आयेतैं । नर नारकौर[1] तिरजंच देवगति विषैं, जथाजोग देह बनै परजाय पायेतैं ॥ संसथान संहनन आदि बहु भेद जाके, पुग्गलदरवकरि रचित बतायेतैं । जैसें एक आगि है अनेक रूप ईंधनतैं, नानाकार तैसे तहां चेतन सुभायेतैं ॥ १८ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

जे भवि भेदविज्ञान धरैं, सब दर्वनिको जुत भेद सुजानै ।
जे अपनो सदभाव धरैं, निज भावविषैं थिर हैं परधानै ॥
द्रव्य गुनौ परजायमई, तिनको ध्रुव वै[2] उतपाद पिछानै ॥
सो परदर्वविषैं कबहूं नहिं, मोहित होत सुबुद्धिनिधानै ॥१९॥

मनहरण ।

जानै काललब्ध पाय दर्श मोहको खिपाय, उपशमवाय वा सुश्रद्धा यों लहाही है । मेरो चिदानंदको दरव गुन परजाय, उतपाद वय ध्रुव सदा मेरे पाहीं है ॥ और परदर्व सर्व निज निज सत्ताहीमें, कोऊ दर्व काहूको सुभाव न गहाही है । तातैं जो प्रगट यह देह खेहँ[3]-खान दीसै, सो तो मेरो रूप कहूं नाहीं नाहीं नाहीं है ॥ २० ॥

---

१ नारक+और । २ व्यय—नाश । ३ मलकी खानि ।

(१०)

द्रुमिला ।

उपयोगसरूप चिदातम सो, उपयोग दुधा¹ छबि छाजत है ।
नित जानन देखन भेद लिये, सो शुभाशुभ होय विराजत है ॥
तिनही करि कर्मप्रबंध बँधै, इमि श्रीजिनकी धुनि गाजत है ।
जब आपमें आपुहि बाजत है, तब श्यौपुर² नौवत बाजत है२१

(११)

मनहरण ।

जब इस आतमाके पूजा दान शील तप, संजम क्रियादि-रूप शुभ उपयोग है । तब शुभ आयु नाम गोत पुन्यवर्ग्ग-नाको, कर्मपिंड बँधै यह सहज नियोग है ॥ अथवा मिथ्या-तविषैं अव्रत कषायरूप, अशुभोपयोग भये पापको सँजोग है । दोऊके अभावतैं विशुद्ध उपयोग वृंद, तहां बंध खंडके अखंड सुख भोग है ॥ २२ ॥

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेवको जानत, प्रीतिसों वृंद तहां लव लावै ।
सिद्धनिको निज ज्ञानतैं देखिकै, ध्यापक होयके ध्यानमें ध्यावै॥
औ अनगार³ गुरूनिमें भक्ति, दया सब जीवनिमाहिं दिढ़ावै ।
ताकहँ श्रीगुरुदेव बखानत, सो शुभरूपपयोग⁴ कहावै ॥ २३ ॥

---

१ द्विधा–दो प्रकार । २ शिवपुर–मोक्ष । ३ दिगम्बर । ४ शुभोपयोग ।

(१२)

मनहरण ।

इंद्रिनिके विषै और क्रोधादि कषायनिमें, जाको परिनाम अवगाढ़ागाढ़ रुखिया । मिथ्याशास्त्र सुनै सदा चित्तमें कुभाव गुनै, दुष्ट संग रंगको उमंग रस चुखिया । जीवनिके घातवेको जतन करत नित, कुमारग चलिवेमें उग्रमुख मुखिया । ऐसो उपयोग सोई अशुभ कहावत है, जाके उर-बसै वह कैसे होय सुखिया ॥ २४ ॥

(१३)

मत्तगयंद ।

मैं निज ज्ञानसरूप चिदातम, ताहि सुध्यावत हौं भ्रम टारी ।
भाव शुभाशुभ बंधके कारन, तातैं तिन्हैं तजि दीनों विचारी ॥
होय मधस्थ विराजत हौं, परदर्वविषैं ममता परिहारी ।
सो सुख क्यों मुखसों बरनौं,जो चखै सो लखै यह बात हमारी २५

दोहा ।

तातैं यह उपदेश अब, सुनो भविक बुधिवान ।
उद्दिम[1] करि जिन वचन सुनि, ल्यो निजरूप पिछान ॥ २६ ॥
ताहीको अनुभव करो, तजि प्रमाद उनमाद ।
देखो तो तिहि अनुभवत, कैसो उपजत स्वाद ॥ २७ ॥
जाके स्वादत ही तुम्हें, मिलै अतुल सुख पर्म ।
पुनि शिवपुरमें जाहुगे, परिहरि अरि वसु कर्म ॥ २८ ॥

१ उद्यम ।

यही शुद्ध उपयोग है, जीवन-मोच्छसरूप ।
यही मोखमग धर्म यहि, यही शुद्धचिद्रूप ॥ २९ ॥

(१४)

मनहरण ।

मै जो हों शुद्ध चिनमूरत दरव सो, त्रिकालमें त्रिजोगरूप भयो नाहिं कबही । तन मन वैनें[1] ये प्रगट पुदगल यातैं, मैं तो याको कारन हू बन्यौ नाहिं तब ही ॥ तथा करतार औ करावनहूहार नाहिं, करताको अनुमोदक हू नाहिं जब ही । ये अनादि पुग्गलकरमहीतैं होते आये, ऐसी वृंद जानी जिनवानी सुनी अब ही ॥ ३० ॥

(१५)

दोहा ।

तन मन वचन त्रिजोग है, पुदगलदरवसरूप ।
ऐसें दयानिधान वर, दरसाई जिनभूप ॥ ३१ ॥
सो वह पुदगल दरवके, अविभागी परमानु ।
तासु खंधको पिंड है, यों निहचै उर आनु ॥ ३२ ॥

(१६)

मनहरण ।

मैं जो हों विशुद्ध चेतनत्वगुनधारी सो तो, पुग्गल दरवरूप कभी नाहिं भासतो । तथा देह पुग्गलको पिंड है सुखंधें[2] बंध, सोऊ मैंने कीनों नाहिं निहचै प्रकासतो ॥ ये तो है

१ वचन । २ स्कंध—परमाणुओंका समूह ।

अचेतन औ मूरतीक जड़ दर्व, मेरो चिच्चमतकार जोत है चकासतो। तातैं मैं शरीर नाहिं करता हू ताको नाहिं, मैं तो चिदानंद वृंद अमूरत सासतो॥ ३३॥

(१७)

अप्रदेशी अनू परदेशपरमान दर्व, सो तो स्वयमेव शब्द-परजैरहत[1] है। तामैं चिकनाई वा रुखाई परिनाम बसै, सोई बंध जोग भाव तासमें कहत है॥ ताहीसेती दोय आदि अनेक प्रदेशनिकी, दशाको बढ़ावत सुपावत महत है। ऐसे पुदगलको सुपिंडरूप खंध बँधै, यासों चिदानंदकंद जुदोई लहत है॥ ३४॥

दोहा।

अविभागी परमानु वह, शुद्ध दरव है सोय।
वरनादिक गुन पंच तो, सदा धरैं ही होय॥ ३५॥
एक वरन इक गंध इक, रस दो फाँसमँझार[2]।
अंतर भेदनिमें धरे, श्रुति लखि लेहु विचार॥ ३६॥

(१८)

मनहरण।

पुग्गलअनूमें[3] चिकनाई वा रुखाई भाव, एक अंशतैं लगाय भाषे भेदरास है। एकै एक बढ़त अनंत लौं विभेद बढ़ै, जातैं परिनामकी शकति ताके पास है॥ जैसे छेरी गाय

१ पर्याय-रहित। २ स्पर्शमें। ३ पुद्गलाणुमें।

भैंस ऊंटनीके दूध घृत, तामें चिकनाई वृद्धि क्रमतैं प्रकास है। धूलि रीख रेतकी रुखाईमें विभेद जैसे, तैसे दोनों भावमें अनंत भेद भास है ॥ ३७ ॥

(१९)

मनहरण।

पुग्गलकी अनू चीकनाई वा रुखाईरूप, आपने सुभाव परिनाम होय पेरनी। अंशनिकी संख्या तामें सम वा विषम होय, दोय अंश बाढ़हीसों बंधजोग वरनी ॥ एक अंश घटे बढ़े बँधत कदापि नाहिं, ऐसो नेम निहचै प्रतीति उर धरनी। चीकन रुखाई अनुखंध हू बँधत ऐसे, आगमप्रमानतैं प्रमान वृंद करनी ॥ ३८ ॥

दोहा।

दोय चार षट आठ दश, इत्यादिक सम जान।
तीन पांच पुनि सात नव, यह क्रम विषम बखान ॥३९॥
चीकनताईकी अनू, सम अंशनि परमान।
दोय अधिक होतें बंधै, यह प्रतीत उर आन ॥ ४० ॥
रुच्छ भावकी जे अनू, ते विषमंश प्रधान।
दोय अधिकतैं बँधत हैं, ऐसें लखो सयान ॥ ४१ ॥
अथवा चीकन रूक्षको, बंध परस्पर होय।
दोय अंशकी अधिकता, जोग मिलै जब सोय ॥ ४२ ॥

---

१ भस्म। २ परिणमन किया, परिनमी। ३ रूक्ष।

एक अनू इक अंशजुत, दुतिय तीनजुत होय।
जदपि जोग है बंधके, तदपि बंधै नहिं सोय ॥ ४३ ॥
एक अंश अति जघन है, सो नहिं बंधै कदाप।
नेमरूप यह कथन है, श्रीजिन भाषी आप ॥ ४४ ॥

(२०)

मनहरण।

चीकन सुभाव दोय अंश परनई अनू, ताको बंध चार अंशवालीहीसों होत है। और जो रुखाई तीन अंश अनू धारे होय, पंच अंशवालीसेती बाको बंध वोत(?)है॥ ऐसे ही अनंत लगु भेद सम विषमके, दोय अंश अधिकतैं बंधको उदोत है। रुच्छचीकनीहू बँधै खंधहूसों खंध बँधै, याही रीतिसेती लखै ज्ञानी ज्ञान जोत है ॥ ४५ ॥

दोहा।

चीकनकी सम अंशतैं, विषम अंशतैं रुच्छ।
दोय अधिक होतें बँधैं, पुग्गलानुके गुच्छ ॥ ४६ ॥
चीकनता गुनकी अनू, पांच अंशजुत जौन।
सात अंश चीकन मिलै, बंध होतु है तौन ॥ ४७ ॥
चार अंशजुत रुच्छसों, षट जुतसों बँध जात।
याही भांति अनंत लगु, जानों भेद विख्यात ॥४८॥
दोय अनू अंशनि गिनैं, होहिं बराबर जेह।
ताको बंध बँधै नहीं, यों जिनवैन भनेह ॥ ४९ ॥

(२१)

छप्पय ।

दो प्रदेश आदिक अनंत, परमानु खंध लग ।
सूच्छिम वादररूप, जिते आकार धरे जग ॥
तथा अवनि जल अनल, अनिल परजाय विविधगन ।
ते सब निंध रु रुच्छ, सुभावहितैं उपजे भन ॥
यह पुदगलदरवरचित सरव, पुग्गल करता जानिये ।
चिनमूरति यातैं भिन्न है, ताहि तुरित पहिचानिये ॥ ५० ॥

(२२)

मनहरण ।

लोकाकाशके असंख प्रदेश प्रदेश प्रति, कारमानवर्गना भरी है पुदगलकी । सूच्छिम और वादर अनंतानंत सर्वठौर, अति अवगाढ़ागाढ़ संधिमाहिं झलकी ॥ आठ कर्मरूप परिनमन सुभाव लियैं, आतमाके गहन करन जोग वलकी । तेईस विकार उपयोगको सँजोग पाय, कर्मपिंड होय बँधै रहै संग ललकी ॥ ५१ ॥

दोहा ।

तातैं पुदगल करमको, आतम करता नाहिं ।
भूल भावतैं जीवकै, करम धूलि लपटाहिं ॥ ५२ ॥

(२३)

मनहरण ।

कर्मरूप होनकी सुभावशक्ति जामैं वसै, ऐसे जे जगत-

---

१ स्निग्ध-चिकना ।

माहिं पुग्गलके खंध हैं। तेई जब जगतनिवासी जग जीव-निके, परिनाम अशुद्धको पावैं सनबंध हैं॥ तबै ताई काल कर्मरूप परिनवैं सोई, ऐसो वृंद अनादितैं चलो आवै धंध है। ते वै कर्मपिंड आतमाने प्रनवाये नाहिं, पुग्गलके खंध-हीसों पुग्गलको बंध है॥ ५३॥

(२४)

जे जे दर्वकर्म परिनये रहे पुग्गलके, कारमानवर्गना सुशक्ति गुप्त धरिके। तेई फेर जीवके शरीराकार होहि सब, देहांतर जोग पाये शक्त व्यक्त करिके॥ जैसे वटबीजमें सुभाव शक्ति वृच्छकी सो, वटाकार होत वही शक्तिको उछ-रिके। ऐसे दर्वकर्म बीजरूप लखो वृंदावन, ताहीको सुफल देह जानों भर्म हरिके॥ ५४॥

(२५)

औदारिक देह जो विराजै नरतीरकके[1], नानाभांति तासके अकारकी है रचना। तथा वैयक्रीयक[2] शरीर देवनारकीके, जथाजोग ताहूके अकारकी है रचना॥ तैजस शरीर जो शुभाशुभ विभेद औ, अहारक तथैव कारमानकी विरचना। ये तो सर्व पुग्गल दरवके बने हैं पिंड, यातैं चिदानंद भिन्न ताहीसों परचना॥ ५५॥

---

१ नर–तिर्यंचके। २ वैक्रियक।

(२६)

अहो भव्यजीव तुम आतमाको ऐसो जानो, जाके रस रूप गंध फास नाहिं पाइये । शब्द परजायसों रहित नित राजत है, अलिंगग्रहन निराकार दरसाइये ॥ चेतना सुभाव-हीमें राजै तिहूंकाल सदा, आनंदको कंद जगवंद वृंद ध्याइये । भेदज्ञान नैनतैं निहारिये जतनहीसों, ताके अनुभव रसहीमें झर लाइये ॥ ५६ ॥

दोहा ।

शब्द अलिंगग्गहन गुरु, लिख्यौ जु गाथामाहिं ।
कछुक अरथ तसु लिखत हों, जुगतागमकी छाँहिं ॥५७॥

चौपाई ।

चिह्न सुपुदगलके हैं जिते । फरस रूप रस गंध जु तिते ।
तिन करि तासु लखिय नहिं चिहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन॥५८
अथवा तीन लिंग जगमाहिं । नारि नपुंसक नर ठहराहिं ।
ताहूकरि न लखिय तसु चिहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥५९॥
अथवा लिंग जु इंद्रिय पंच । ताहूकरि न लखिय तिहि रंच ।
अतिइंद्रियकरि जानन सहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥६०॥
अथवा इंद्रियजनित जु ज्ञान । ताकरि है न प्रतच्छ प्रमान ।
की है आतमको यह चिहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥६१॥
अथवा लिंग नाम यह जुप्त । लच्छन प्रगट लच्छ जसु गुप्त ।
धूम अग्नि जिमि तिमि नहिं चिहन। याहूतैं सु अलिंगग्गहन॥६२॥

अथवा आनमती बहु बकैं। दोषसहित लच्छन अन तकैं।
ताहूकरि न लखिय तसु चिहन। याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥६३॥
इत्यादिक बहु अरथविधान। शब्द अलिंगगहनको जान।
सो विशालटीकातैं देखि। पंडित मनमें दियौ विशेखि ॥६४॥
यह चेतन चिद्रूप अनूप। शुद्ध सुभाव सुधारसकूप।
स्वसंवेदनहिकरि सो गम्य। लखहिं अनुभवी समरसरम्य ॥६५॥
शब्दब्रह्मको पाय सहाय। करि उद्दिम मन वचनन काय।
काल लब्धिको लहि संजोग। पावैं निकटभव्य ही लोग॥६६॥
तातैं गुन अनंतको धाम। वचनअगोचर आतमराम ॥
वृंदावन उर नयन उघारि। देखो ज्ञानजोति अविकारि ॥६७॥

(२७)

मनहरण।

मूरतीक रूप आदि गुनको धरैया यह, पुग्गल दरवसों फरस आदिवानसों। आपुसमें बंधै नाना भांति परमानू खंध, सो तो हम जानी सरधानी परमानसों॥ तासों विपरीत जो अमूरत चिदातमा सो, कैसे बँधै पुग्गल दरव मूर्तिमानसों। यह तौ अचंभौ मोहि ऐसो प्रतिभासै **वृंद**, अमल मिलाप ज्यों **"नितंब जुरैं कानसों"** ॥ ६८ ॥

(२८)

रूपादिक जे हैं मूरतीक गुन पुग्गलके, तिनसों रहित

जीव सर्वथा प्रमानसों । ऐसो है तथापि वह शून्यरूप होत- नाहिं, आपनी सुसत्तामें विराजै परधानसों ॥ सर्व दर्व सदा निज दर्वित आकार धरे, काहूको आकार कभी मिलै नाहिं आनसों । तैसे ही अरूपी चिदाकार वृंद आतमा है, ताके अब सुनो जैसे बँधत विधानसों ॥ ६९ ॥

रूपी दर्व घटपट आदिक अनेक तथा, ताके गुनपर- जाय विविध वितानसों । तिनको अरूपी जीव देखै जानै भलीभांत, यह तो अबाध सिद्ध प्रतच्छ प्रमानसों ॥ जो न होत असरूप वस्त यह आतमा तौ, कैसे ताहि देखतौ औ जानतौ महानसों ॥ तैसे ताके बंधको विधान हू सुजानौ वृंद, समिल मिलाप ज्यों "शबद जुरैं कानसों" ॥ ७० ॥

दोहा ।

देखन जाननकी शकति, जो न जीवमहँ होत ।
तब किहि विधि संसारमें, बंधन होत उदोत ॥ ७१ ॥
मोह राग रुष भावकरि, देखत जानत जीव ।
ताही भावविकारसों, आपु हि बँधत सदीव ॥ ७२ ॥
राग चिकनताई भई, दोष रुच्छता भाय ।
याहीके सुनिमित्ततैं, पुदगलकरम बँधाय ॥ ७३ ॥
आतमके परदेश प्रति, दर्वित कर्म अनाद ।
तिनसों नूतन करमको, बंध परत निरवाद ॥ ७४ ॥
यह विवहारिक बंधविधि, निहचै बंध न सोय ।
जहँ अशुद्ध उपयोग है, मोह त्रिकंटक जोय ॥ ७५ ॥

मनहरण।

जैसे ग्वालबालगन बैल सांचे माटीनिके, देखि जानि तिन्हें अपनाये राग जोरसों। तिनके निकट कोऊ मारै छोरै बैलनिको, तबै ते अधीर होय रोवैं धोवैं शोरसों॥ तहां अब करो तो विचार भेदज्ञानी वृंद, बंधे वे वयल सो की ममताकी डोरसों। तैसें पुदगल कर्म वाहिज निमित्त जानो, बंध्यौ जीव निहचै अशुद्धता—मरोरसों॥ ७६॥

(२९)

माधवी।

उपयोगसरूप चिदातम सो, इन इंद्रिनिकी सतसंगति पाई।
बहु भांतिके इष्ट अनिष्टविषैं, तिनको तित जोग मिलै जब आई॥
तब राग रु दोष विमोह विभावनि,—सों तिनमें प्रनवै लपटाई।
तिनहीकरि फेरि बंधै तहँ आपु, यों भाविकबंधकी रीति बताई ७७

(३०)

मनहरण।

रागादि विभावनिमें जौन भावकरि जीव, देखै जानै इंद्रिनिके विषय जे आये हैं। ताही भावनिसों तामें तदाकार होय रमै, तासों फेरि बँधै यही भावबंध गाये हैं॥ सोई भावबंध मानों चीकन रुखाई भयो, ताहीके निमित्तसेती दर्वबंध गाये हैं। जामें आठ कर्मरूप कारमानवर्गना है, ऐसे सरवज्ञ भनि वृंदको बताये हैं॥ ७८॥

(३१)

पुव्वबंध पुग्गलसों फरस विभेदकरि, नयो कर्मवर्गनाके पिंडको गथन है। जीवके अशुद्ध उपयोग रागआदिकरि, होत मोह रागादि विभावको नथन है ॥ दोऊको परस्पर सँजोग एक थान सोई, जीव पुग्गलातमके बंधको कथन है। ऐसे तीन बंधभेद वेदमें निवेद बृंद, भेदज्ञानीजनित सिद्धांतको मथन है ॥ ७९ ॥

(३२)

असंख्यात प्रदेश प्रमान यह आतमा सो, ताके परदेश विषैं ऐसे उर आनिये। पुग्गलीक कारमान वर्गनाको पिंड आय, करत प्रवेश जथाजोग सरधानिये ॥ फेरि एक छेत्र अवगाहकरि बंधत है, थिति परमान संग रहैं ते सुजानिये। देय निज रस खिर जाहिं पुनि आपुहिसों, ऐसो भेद भर्म छेद भव्य बृंद मानिये ॥ ८० ॥

दोहा।

कायवचनमन जोगकरि, जो आतम परदेस।
कंपरूप होवैं तहां, जोग बंध कहि तेस ॥ ८१ ॥
तासु निमिततैं आवही, करमवरगनाखंध।
सो ईर्यापथ नाम कहि, प्रकृति प्रदेश सुबंध ॥ ८२ ॥
रागविरोध विमोहके, जैसे भाव रहाहिं।
ताहीके अनुसारतैं, थिति अनुभाग बँधाहिं ॥ ८३ ॥

(३३)

द्रुमिला।

परदर्वविषैं अनुराग धरै, वसु कर्मनिको सोइ बंध करै।
अरु जो जिय रागविकार तजै, वह मुक्तबधूकहँ बेगि बरै॥
यह बंध र मोच्छसरूप जथारथ, थोरहिमें निरधार धरै।
निहचै करिके जगजीवनिके, तुम जानहु वृंद प्रतीत भरै॥८४॥

चौपाई।

रागभाव प्रनवैं जे आँधे। नूतन दरव करम ते बाँधे॥
वीतरागपद जो भवि परसै। ताको मुक्तअवस्था सरसै॥८५॥

दोहा।

रागादिकको त्यागि जे, वीतराग हो जाहँ।
चले जाहिं वैकुंठमें, कोइ न पकरै बाहँ॥ ८६ ॥

(३४)

मनहरण।

परिनाम अशुद्धतैं पुग्गलकरम बँधै, सोई परिनाम राग-दोषमोहमई है। तामें मोह दोष तो अशुभ ही है सदा काल, रागमें दुभेद वृंद वेद वरनई है॥ पंच परमेश्वरकी भक्ति धरमानुराग, यह शुभराग भाव कथंचित लई है। विषय कषायादिक तामें रतिरूप सो, अशुभ राग सरवथा त्यागजोग तई है॥ ८७॥

(३५)

परवस्तुमाहिं जो पुनीत परिनाम होत, ताको पुन्य नाम

वृंद जानो हुलसंत है। तैसे ही अशुभ परिनाम परवस्तु-विषैं, ताको नाम पाप संकलेशरूप तंत है ॥ जहां परवस्तु विषैं दोऊ परिनाम नहिं, केवल सुसत्ताहीमें शुद्ध वरतंत है। सोई परिनाम सब दुःखके विनाशनको, कारन है ऐसे जिन-शासन भनंत है ॥ ८८ ॥

चौपाई ।

पर परनतितैं रहित विचच्छन। सकलदुःखखयकारन लच्छन ॥
मोच्छवृच्छतरुवीज विलच्छन। शुद्धपयोग गहैं शिवगच्छन ८९

(३६)

मत्तगयन्द ।

थावरजीव निकायनिके, पृथिवी प्रमुखादिक भेद घने हैं।
औ त्रसरासि निवासिनके, तनके कितनेक न भेद बने हैं ॥
सो सब पुग्गलदर्वमई, चिनमूरतितैं सब भिन्न ठने हैं।
चेतन हू तिन देहनितैं, निहचै करि भिन्न जिनिंद भने हैं ९०

(३७)

जो जन या परकारकरी, निज औ परको नहिं जानत नीके।
आपसरूप चिदानँद वृंद, तिसे न गहै मदमोह वमीके ॥
सो नित मैं तनरूप तथा, तन है हमरो इमि मानत ठीके।
भूरि भवावलिमाहिं भमै, निहचै वह मोह महामद पीके ॥९१॥

(३८)

मनहरण ।

आतमा दरव निज चेतन सुपरिनाम, ताहीको करत सदा ताहीमें रमत है। आपने सुभावहीको करता है निहचै सो, निजाधीन भाव भूमिकाहीमें गमत है ॥ पुग्गलदरवमई जेते हैं प्रपंच संच, देहादिक तिनको अकरता समत है। ऐसो भेद भेदज्ञान नैनतैं विलोको वृंद, याही विना जीव भव भाँवरी भमत है ॥ ९२ ॥

(३९)

दुमिला ।

यह जीव पदारथकी महिमा, जगमें निरखो भ्रमको हरिके।
मधि पुग्गलके परिवर्ततु है, सब कालविषैं निहचै करिके ॥
तब हू तिन पुग्गल कर्मनिको, न गहै न तजै न करै धरिके।
वह आपुहि आप सुभावहितैं, प्रनवै सतसंगतिमें परिके॥९३॥

(४०)

मनहरण ।

सोई जीवदर्व अब संसार अवस्थामाहिं, अशुद्ध चेतना जो विभावकी ढरनि है। ताहीको बन्यौ है करतार ताके निमितसों, याके आठ कर्मरूप धूलिकी धरनि है ॥ सोई कर्म धूल मूल भूलको सुफल देहि, फेरि काहू कालमाहिं तिनकी करनि है। ऐसे बंधजोग भाव आपनो विभाव जानि, त्यागै भेदज्ञानी जासों संसृत तरनि है ॥ ९४ ॥

(४१)

जबै जीव रागदोष समल विभावजुत, शुभाशुभरूप परिनामको ठटत है । तबै ज्ञानावरनादि कर्मरूप परज याके, जोग द्वार आयकै प्रदेशपै पटत है ॥ जैसे रितु पावसमें धाराधर धारनितैं, धरनिमें नूतन अंकुरादि अटत है । तैसे ही शुभाशुभ अशुद्ध रागदोषनितैं, पुग्गलीक नयौ कर्म बंधन वटत है ॥ ९५ ॥

दोहा ।

तातैं पुदगल दरव ही, निज सुभावतैं मीत ।
अति विचित्रगति कर्मको, कर्ता होत प्रतीत ॥ ९६ ॥

(४२)

मनहरण ।

सो असंख प्रदेश प्रमान जगजीवनिके, मोह राग दोष ये कषायभाव संग है । ताहीतैं करमरूप रजकरि बँधै ऐसे, सिद्धांतमें कही वृंद बंधकी प्रसंग है ॥ जैसे पट लोध फटकड़ी आदितैं कसैलो, चढ़त मजीठ रंग तापै सरवंग है । तैसे चिदानंदके असंख परदेशपर, चढ़त कषायतैं करम रज रंग है ॥ ९७ ॥

(४३)

बंधको कथन यह थोरेमें गथन निहचै मथनकरि ज्ञान तुलामें तुलतु है । जीवनिके होत सो दिखाई जिनराज मुनि,—

मंडलीको जानैं उरलोचन खुलतु है ॥ यासों विपरीत जो है पुद्गलीक कर्मबंध, सो है विवहार वृंद काहेको भुलतु है। निज निज भावहीके करता सरव दर्व, यही भूले जीव कर्म-झूलना झुलतु है ॥ ९८ ॥

पुण्यपापरूप परिनाम जो हैं आतमाके, रागादि सहित ताको आपु ही है करता। तिन परिनामनिकों आप ही गहन करै, आपु ही तजन करै ऐसी रीति धरता ॥ तातैं इस कथनको कथंचित शुद्ध दरवारथीक नय ऐसे भनी भर्म-हरता। पुग्गलीक दर्व कर्मको है करतार सो, अशुद्ध विवहार-नयद्वारतैं उचरता ॥ ९९ ॥

प्रश्न । छप्पय ।

रागादिक परिनाम बंध, निहचै तुम गाये ।
फेरि शुद्ध दरवारथीक नय, विषय बताये ॥
पुनि सो गहने जोग, कहत हौ हे मुनिराई ।
वह रागादि अशुद्ध, दरवको करत सदाई ॥
यह तो कथनी नहिं संभवत, क्यों अशुद्धको गाहिये ।
याको उत्तर अब देयके, संशय मैटो चाहिये ॥ १०० ॥

उत्तर । दोहा ।

रागादिक परिनाम तौ, है अशुद्धतारूप ।
याहीकरि संसारमें, है अशुद्ध चिद्रूप ॥ १०१ ॥

यामें तौ संदेह नहिं, है परंतु संकेत।
यहाँ विविच्छाभेदतैं, कथन करी जिहि हेत॥ १०२॥

छप्पय।

शुद्ध दरवका कथन, एक दरवाश्रित जानो।
और दरवका और मो(?), अशुद्धता सो(?) मानो॥
यही अपेच्छा यहां, कथनका जोग बना है।
औ पुनि निहचै बंध, नियत नय गहन भना है॥
ताको सुहेत अब कहत हौं, सुनो गुनो मन लायकै।
जातैं सब संशय दूर है, सुथिर होहु शिव पायकै॥१०३॥

चौबोला।

जो यह जीव लखै अपनेको, निज विकारतैं बंध धरै।
तौ विकार तजि वीतराग है, छूटन हेत उपाय करै॥
जो परकृत बंधन समुझै तब, वेदांतीवत नाहिं डरै।
यही अपेच्छा यहां कथन है, समुझै सो भवसिंधु तरै॥१०४॥

(४४)

मनहरण।

जाकी मति मैली ऐसी फैली जो शरीरपर, दर्वहीको कहै की हमारो यही रूप है। तथा यह मेरो ऐसो चेरो भयो मोहहीको, छोड़ै न ममत्व बुद्धि धरै दौरधूप है॥ सो तो साम्यरसरूप शुद्ध मुनिपद ताको, त्यागिके कुमारगमें चलत कुरूप है। ताको ज्ञानानंदकंद शुद्ध निरद्वंद सुख, मिलै न कदापि वह परै भवकूप है॥ १०५॥

दोहा ।

है अशुद्ध नयको विषय, ममता मोह विकार ।
ताहि धरे वरतै सु तौ, लहै न पद अविकार ॥ १०६ ॥

(४५)

मनहरण ।

मैं जो शुद्ध बुद्ध चिनमूरत दरव सो तौ, परदर्वनिको न भयो हों काहू कालमें । देहादिक परदर्व मेरे ये कदापि नाहिं, ये तौ निजसत्ताहीमें रहैं सब हालमें ॥ मैं तौ एक ज्ञानपिंड अखंड परमजोत, निर्विकल्प चिदाकार चिदानंद चालमें । ऐसें ध्यानमाहिं जो सुध्यावत सरूप वृंद, सोई होत आतमाको ध्याता वर भालमें ॥ १०७ ॥

दोहा ।

शुद्ध दरवनयको गहै, निहचैरूप अराध ।
शुद्ध चिदातम सो लहै, मैटै कर्म उपाध ॥ १०८ ॥

(४६)

मनहरण ।

हूं जो हौं विशुद्ध भेदज्ञान नैनधारी सो, निजातमा दरव ताहि ऐसे करि जानौ हौं । सहज सुभाव निज सत्ताहीमें ध्रौव सदा, ज्ञानके सरूप दरसनमई मानौ हौं ॥ परभाव तजे तातैं शुद्ध औ अतिंद्री सर्व, पदारथ जानेतैं महारथ प्रमानौ हौं । आपने सरूपमें अचल परवस्तुकों न, अवलंब करे यातैं अनालंब ठानौ हौं ॥ १०९ ॥

दोहा ।

ज्ञानरूप दरसनमई, अतिइंद्री ध्रुव धार ।
महा अरथ पुनि अचलवर, अनालंब अविकार ॥ ११० ॥
सात विशेषनि सहित इमि, लख्यौ आतमाराम ।
ताही शुद्ध सरूपमें, हम कीनों विसराम ॥ १११ ॥
पंच विशेषनिको कथन, करि आये बहु थान ।
अनालंब अरु महारथ, इनको सुनो बखान ॥ ११२ ॥

मनहरण ।

कर्ममल नासिके प्रकाश होत ज्ञान जोत, सो तौ एक-रूप ही अभेद चिदानंद है । तासमें सभेद बृंद ज्ञेय प्रति-विंब सब, तासकी सपेच्छ भेद अनंत सुछंद है ॥ पांचों जड़-दर्वके सरूपको दिखावै सोई, याहीतैं महारथ कहावत अमंद है । परवस्तुको सुभाव कभी न अलंब करै, तातैं अनालंब याकों भाषैं जिनचंद है ॥ ११३ ॥

(४७)

दोहा ।

तन धन सुख दुख मित्र अरि, अध्रुव भने जिनभूप ।
ध्रौव निजातम ताहि गहु, जो उपयोगसरूप ॥ ११४ ॥

(४८)

मत्तगयन्द ।

जो भवि होय महाव्रतधारक, या सु अनुव्रतकारक कोई ।
या परकारसों जो परमातम, जानिके ध्यावत है थिर होई ॥

सो सुविशुद्ध सुभाव अराधक, मोहकी गांठि खपावत सोई।
ग्रंथनिको सब मंथनिकै, निरग्रंथ कथ्यौ रससार इतोई॥११५॥

(४९)

मनहरण।

अनादिकी मोह दुरबुद्धिमई गांठि ताहि, जाने दूर कियौ निज भेदज्ञान बलतैं। ऐसो होत संत वह इंद्रिनिके सुख दुख, सम जानि न्यारे रहै तिनके विकलतैं॥ सोई महाभाग मुनिराजकी अवस्थामाहिं, रागदोष भावको विनाशै मूल थलतैं। पावै सो अखंड अतिइंद्रिय अनंत सुख, एक रस वृंदावन रहै सो अचलतैं॥ ११६॥

(५०)

मोहरूप मैलको खिपावै भेदज्ञानी जीव, इंद्रिनिके विषैसों विरागता सु पुरी है। मनको निरोधिके सुभावमें सुथिर होत, जहां शुद्ध चेतनाकी ज्ञानजोत फुरी है॥ सोई चिनमूरत चिदातमाको ध्याता जानो, पर वस्तुसे भी जाकी प्रीति रीति दुरी है। ऐसे कुंदकुंदजी बखानी ध्यान ध्याता वृंद, सोई सरधानै जाकी मिथ्यामति चुरी है॥ ११७॥

प्रश्न-दोहा।

जो मन चपल पताका[1]पट, पवन दीपसम ख्यात।
सो मन कैसे होय थिर, उत्तर दीजे भ्रात॥ ११८॥

---

१ पताका-निशानका वस्त्र।

उत्तर-

पांचों इंद्रिनके जिते, विषय भोग जगमाहिं ।
तिनहीसों मन रातदिन, भमतो सदा रहाहि ॥ ११९ ॥
मोह घटे वैरागता, होत तजै सब भोग ।
निज सुभाव सुखमाहिं तब, लीन होय उपयोग ॥१२०॥
तहां सुमनको खैंचके, एक निजातम भाव ।
तामधि आनि झुकाइये, भेदज्ञानपरभाव ॥ १२१ ॥
तहां सो मनकी यह दशा, होत औरसे और ।
जैसे काग-जहाजको, सूझै और न ठौर ॥ १२२ ॥
जो कहुँ इत उतको लखै, तौ न कहूं विसराम ।
तब हि होय एकाग्र मन, ध्यावै आतमराम ॥ १२३ ॥
ऐसे आतमध्यानतैं, मिलै अतिंद्री शर्म ।
शुद्ध बुद्ध चिद्रूपमय, सहज अनाकुल धर्म ॥ १२४ ॥

(५१)

मनहरण ।

घातिकर्म घाति भलीभांत जो प्रतच्छ सर्व, वस्तुको सरूप निज ज्ञानमाहिं धरै है । ज्ञेयनिके सत्तामें अनंत गुन-पर्ज शक्ति, ताहूको प्रमानकरि आगे विसतरै है ॥ असंदेह-रूप आप ज्ञाता सिरताज वृंद, संशय विमोह सब विभ्रमको हरै है । ऐसो जो श्रमण सरवज्ञ वीतराग सो, बतावो अब कौन हेत काको ध्यान करै है ॥ १२५ ॥

मोह उदै अथवा अज्ञानतासों जीवनिके, सकल पदारथ प्रतच्छ नाहि दरसै। यातैं चित चाहकी निवाह हेत ध्यान करै, अथवा संदेहके निवारिवेको तरसै॥ सो तो सरवज्ञ वीतरागजूके मूल नहिं, घातिविधि घातें ज्ञानानंद सुधा वरसै। इच्छा आवरन अभिलाप न संदेह तब, कौन हेत ताको ध्यावै ऐसो संशै परसै॥ १२६॥

(५२)

ज्ञानावरनादि सर्व बाधासों विमुक्त होय, पायो है अबाध निज आतम धरम है। ज्ञान और सुख सरवंग सब आतमाके, जासों परिपूरित सो राजे अभरम है॥ इंद्रीसों रहित उतकिष्ट अतिइंद्री सुख, ताहीको एकाग्ररूप ध्यावत परम है। ये ही उपचारकरि केवलीके ध्यान कह्यौ, भेदज्ञानी जानै यह भेदको मरम है॥ १२७॥

दोहा।

अतिइंद्री उतकिष्ट सुख, सहज अनाकुलरूप।
ताहीको एकाग्र निज, अनुभवते जिनभूप॥ १२८॥
अनइच्छक बाधा रहित, सदा एक रस धार।
यहै ध्यान तिनके कह्यौ, नय उपचार अधार॥ १२९॥
पुव्व कर्मकी निरजरा, नूतन बंधै नाहिं।
यही ध्यानको फल लखौ, **वृंदावन** मनमाहिं॥ १३०॥

१ घातिया कर्म।

(५३)

मनहरण।

या प्रकार पूरवकथित शिवमारगमें, सावधान होय जो विशुद्धता सँभारी है। चरमशरीरी जिन तथा तीरथंकर, जिनिंददेव सिद्ध होय वरी शिवनारी है॥ तथा एक दोय भवमाहिं जे मुकत जाहिं, ऐसे जे श्रमन शुद्धभावअधिकारी है। तिन्हैं तथा ताही शिवमारगको वृंदावन, वार वार भली भाँति वंदना हमारी है॥ १३१॥

दोहा।

बहुत कथन कहँ लगु करों, जो शुद्धातम तत्त[1]।
ताहीमें परवर्त[2] करि, भये जु तद्गत[3]-रत्त॥ १३२॥
ऐसे सिद्धनिकों तथा, आतमअनुभवरूप।
शुद्ध मोख-मगको नमों, दरवितभाव सरूप॥ १३३॥

(५४)

मनहरण।

तातैं जैसे तीरथेश आदि निजरूप जानि, शुद्ध सरधान ज्ञान आचरन कीना है। कुंदकुंद स्वामी कहैं ताही परकार हम, ज्ञायक सुभावकरि आपै आप चीना है॥ सर्व परवस्तुसों ममत्वबुद्धि त्यागकरि, निर्ममत्व भावमें सु विसराम लीना है। सोई समरसी वीतराग साम्यभाव वृंद, मुक्तको मारग प्रमानत प्रवीना है॥ १३४॥

१ तत्त्व। २ प्रवृत्ति। ३ तद्गतरक्त—लवलीन।

मेरो यह ज्ञायक सुभाव जो विराजत है, तासों और ज्ञेयनिसों ऐसो हेत झलकै । कैधों वे पदारथ उकीरे ज्ञान थंभमाहिं, कैधों ज्ञान पटविषैं लिखे हैं अचलकै ॥ कैधों ज्ञान कूपमें समानै हैं सकल ज्ञेय, कैधों काहू कीलि राखे त्याग तन पलकै । कैधों ज्ञानसिंधुमाहिं डूबे धों लपटि रहे, कैधों प्रतिविंबित हैं सीसेके महलकै ॥ १३५ ॥

ऐसो ज्ञान ज्ञेयको बन्यो है सनबंध तऊ, मेरो रूप न्यारो जैसें चंद्रमा फलकमें । अनादिसों और रूप भयो है कदापि नाहिं, ज्ञायक सुभाव लिये राजत खलकमें ॥ ताको अब निहचै प्रमान करि **वृंदावन**, अंगीकार कियो भेदज्ञानकी झलकमें । त्यागी परमाद परमोद धारि ध्यावत हों, जातैं पर्म धर्म शर्म पाइये पलकमें ॥ १३६ ॥

दोहा ।

मेरो रूप अनादितैं, थो याही परकार ।
मोहि न सूझ्यो मोहवश, ज्यों मृग मृगमद[2] धार ॥ १३७
अब जिनप्रवचनदीपकरि, आप रूप लखि लीन ।
तजि आकुल भ्रम मोहमल, भये तासुमें लीन ॥ १३८ ॥
अब वंदों शिवपंथ जो, शुद्धपयोग सरूप ।
इक अखंड वरतत त्रिविधि, अमल अचल चिद्रूप ॥ १३९
भये जासु परसादतैं, शुद्ध सिद्ध भगवान ।
सुमग[3]संहित वंदों तिन्हें, भावसहित धरि ध्यान ॥ १४० ॥
और जीव तिहि मगविषैं, जे वरतत उमगाय ।
भावभगतजुत प्रीतिसों, तिन्हें नमों सिरनाय ॥ १४१ ॥

१ कांचके । २ कस्तूरी । ३ जैन आगम ।

कुन्दकुन्द श्रीगुरु भये, भवदधितरन जिहाज ।
प्रवचनसार प्रकाशके, सांरे[1] भविजन काज ॥ १४२ ॥
ते गुरु मो मन मल हरो, प्रगटो स्वपरविवेक ।
आपा पर पहिचानमें, रहै न भर्म रतेक[2] ॥ १४३ ॥

चौपाई ।

पूरन होत अबै अविकार । हेयादेय छटो अधिकार ।
आगे चारितको अधिकार । होत अरंभ शुद्ध सुखकार ॥ १४४ ॥

छन्द कवित्त ।

मोह भरम तम भरचो अभिंतर, होत न आपा पर निरधार ।
पुग्गल-जनित ठाट बहुविधि लखि, ताकों आपा लखत गँवार ॥
आपरूप जो वस्तु विलच्छन, ज्ञायक लच्छन धरै उदार ।
भेदज्ञान विन सो नहिं सूझत, है वह "तिनके[3] ओट पहार" १४५

दोहा ।

जैवंतो जिनदेव जो, पायौ शुद्ध सरूप ।
कर्म कलंक विनाशिके, भये अमल चिद्रूप ॥ १४६ ॥
सो इत नित मंगल करो, सुखसागरके इंदु ।
वृंदावन वंदन करत, अर्ह वरन जुत विंदु ॥ १४७ ॥

इति श्रीमत्कुंदकुंदाचार्यकृत परमागम श्री प्रवचनसारजीकी वृंदावन-कृत भाषाविषैं द्रव्यानिका विशेषरूप कथनका अधिकारके पीछें विवहारिक जीवदशा ज्ञेयतत्वकथन ऐसा छठ्यो अधिकार सम्पूर्णम् ।

मिती पौषवदी ९ भौम संवत् १९०५ काशीजीमें वृंदावनने लिखी स्वपरोपकाराय । इहांताई गाथा २०२ । और भाषाके छंद सब ७२८ भये सो जयवंत होहु—

[1] पूर्ण किये । [2] रती भर भी । [3] तृणके अर्थात् तिनकाके ।

ओं नमः सिद्धेभ्यः

अथ सप्तमोश्चारित्राधिकारः।

मंगलाचरण।

दोहा।

श्रीअरहंत प्रनाम करि, सारद सुगुरु मनाय।
विघनकोट जातैं कटैं, नित नव मंगलदाय ॥ १ ॥
चारितको अधिकार अब, शिवसुखसाधनहेत।
लिखौं ग्रंथ-पथ पेखकै, जो अबाध सुख देत ॥ २ ॥

अथ मोक्षभिलाषीका लक्षण। मनहरण।

मोच्छअभिलाषी भव्य जीवको प्रथम सर्व, दर्वनिको जथारथ ज्ञान भयो चहिये। तैसेंही चारित्रको सरूप भले जान करि, ज्ञानके सुफलहेत ताकों तब गहिये॥ आतमीक ज्ञानसेती जेती अविरोध क्रिया, इच्छा अहंकार तजि ताहीको निबहिये। ऐसे ज्ञान आचरन दोनोंमाहिं वृंदावन, एकताई भयेहीसों अखै सुख लहिये ॥ ३ ॥

दोहा।

ग्रंथारभ विषैं सुगुरु, जिहिकरि बंदे इष्ट।
तिनहीं गाथनिसों यहां, नमें पंचपरमिष्ट ॥ ४ ॥
फिर गुरु कहत दयाल वर, जिमि हम इष्ट मनाय।
अमलज्ञान दरसनमई, पायौ साम्य सुभाय ॥ ५ ॥
तैसेही भवि वृंद तुम, दुखसों छूटनहेत।
यह मुनिमारग आचरौ, जो सुभावनिधि देत ॥ ६ ॥

(१)

द्रुमिला ।

अपने सुकुटंब समूहनिसों, वह पूछिकै भेदविज्ञानधनी ।
गुरु मात पिता रमनी सुतसों, निरमोहित होय विराग भनी ॥
तव दर्शन ज्ञान चरित्र तथा, तप वीरज पंच अचार गनी ।
इनको दिढ़ताजुत धारत है विधि,—सों सविवेक प्रमाद हनी॥७॥

अथ वन्धुवर्गसंवोधन-विधि । चौपाई ।

मुनिमुद्रा जो धारन चहै । सो इमिसब कुटुंबसों कहै ।
जो यह तनमें चेतनराई । सो आतम तुम्हरो नहिं भाई ॥८॥
यह निहचैकरि तुम अवधारो । तातैं मोसों ममता छाँरो ॥
मो उर ज्ञानजोत परकासे । आपुहि आप बंधु ढिग भासे॥९॥

मातुपिता संबोधन ।

इस जनके तनके पितुमाता । अहो सुनो तुम वचन विख्याता ॥
इस तनको तुमने उपजाया। आतमको तुम नहिं निपजाया॥१०॥
यह निहचैकरके अवधारो । तातैं मोसों ममता छाँरो ॥
ज्ञानजोतिजुत आतमरामा। यह प्रगटचौ है चिदगुनग्रामा॥११॥
अपनो सहजसुभाव सु सत्ता । सोई मातपिता ध्रुववत्ता ॥
तासों यह अब प्रापत हो है । यातैं मोसों तजिये मोहै॥१२॥

स्त्रीसंबोधनबचन ।

हे इस चेतन तनकी नारी । रमी तु तनसों बहुत प्रकारी ॥
आतमसों तू नाहिं रमी है । यह निहचैकरि जानि सही है॥१३॥

तातैं इस आतमसों ममता। तजि करि तू अब धरि उर समता॥
मम घट ज्ञानजोत अब जागा॥विषयभोग विषसम मोहि लागा१४
निजअनुभूतरूप वरनारी। तासों रमन चहत अविकारी॥
इहि विधि परविरागजुत वानी। कहै नारिसों भेदविज्ञानी१५

पुत्रसंबोधन वचन।

हो इस जनके तनके जाये। पुत्र सुनो मम वचन सुहाये॥
तू इस आतमसों नहिं जाया। यह निहचैकरि समुझ सु भाया१६
तातैं तुम मम ममता त्यागो। समताभाव-सुधारस पागो॥
यह आतम निजज्ञानजोतिकर। प्रगट भयो उर-मोह-तिमर-हर१७
याके सुगुन सुपूत सयाने। हैं अनादितैं संग प्रधाने॥
तिनसों प्रापति होंन चहै है। तुमसों यह समुझाय कहै है१८॥

दोहा।

बंधवरगसों आपुको, या विधि लेय छुड़ाय।
कहि विरागके वचन वर, मुनिपद धारै जाय॥ १९॥
जो आतमदरसी पुरुष, चाहै मुनिपद लीन।
सो सहजहि सुकुटुंबसों, है विरकत परवीन॥ २०॥
ताहि जु आय परै कहूं, कहिबेको सनबंध।
तो पूरव परकारसों, कहै वचन निरबंध॥ २१॥
कछु ऐसो नहिं नियम जो, सब कुटुंब समुझाय।
तबही मुनिमुद्रा धरै, बसै सु वनमें जाय॥ २२॥
सब कुटुंब काहू सुविधि, राजी नाहीं होय।
गृह तजि मुनिपद धरनमैं, यह निहचै करि जोय॥२३॥

जो कहुं बनै बनाव तौ, पूरवकथित प्रकार ।
कहि विरागजुत वचन वर, आप होय अनगार ॥ २४ ॥
तहां बंधुके वर्गमें, निकटभव्य कोइ होय ।
सुनि विरागजुत वचन तित, मुनिव्रत धारै सोय ॥ २५ ॥

अथ पंचाचारग्रहणविधि ।

अब जिस विधिसों गहत हैं, पंचाचार पुनीत ।
लिखों सुपरिपाटीसहित, जथा सनातनरीत ॥ २६ ॥

मनहरण ।

आतमविज्ञानी जीव आपने सरूपको, सुसिद्धके समान देखि जानि अनुभवता । उपाधीक भावनितैं आपुको नियारो मानि, शुभाशुभक्रिया हेय जानिके न भवता ॥ पुव्वबद्ध उदैतैं विकारपरिनाम होत, रहै उदासीन तहां आकुल न पवता । सो तो परदर्वनिको त्यागी है सुभावहीतैं, गहै ज्ञान-गुन वृंद तामें लवलवता ॥ २७ ॥

दोहा ।

ऐसे ज्ञानी जीवको, अब क्या त्यागन जोग ।
अंगीकार करै कहा, जहँ सुभावरस भोग ॥ २८ ॥
पै चारित्रसुमोहवश, होहिं शुभाशुभभाव ।
तासु अपेच्छातैं तिन्हैं, त्याग गहन दरसाव ॥ २९ ॥
प्रथमहिं गुनथानकनिकी, परिपाटी परमान ।
अशुभरूप परनति तजै, निहचै सो वुधिवान ॥ ३० ॥

पीछे शुभ परनतिविषैं, रतनत्रय विवहार ।
पंचाचार गहन करै, सो जतिमति अनुसार ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

अहो आठविधि ज्ञानाचार । कालाध्ययन विनय हितकार ॥
उपाधान बहुमान विधान । और अनिह्नव भेद प्रमान ॥ ३२ ॥
अरथ तथा विंजन उर आन । तदुभयसहित आठ इमि जान ।
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नहीं ॥ ३३ ॥
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ॥
तुवप्रसाद सीझै मम काज । यों कहि विनय गहै गुन साज ३४

अथ दर्शनाचारधारणविधि ।

अहो आठ दरशनआचारा । निःशंकित निःकांछित धारा ॥
निरविचिकित्सा निरमूढ़ता । उपगूहन थिंति[1] वाच्छलता[2] ॥
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातम सुभाव तू नही ॥
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ३६॥
तुवप्रसाद सीझै मम काज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
समदिष्टी भविजीव प्रवीन । हिये विवेकदशा अमलीन ॥३७॥

अथ चारित्राचारधारणविधि ।

अहो मुकतिमगसाधनहार । तेरहविधि चारित्राचार ॥
पांच महाव्रत गुपति सु तीन । पांचों समिति भेद अमलीन ३८
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातम सुभाव तू नही ।
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जब लों-शुद्धातम निज लहों ३९॥

---

१ स्थितिकरण । २ वात्सल्य ।

तुव प्रसाद सीझै ममकाज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
सुपरदया दोनों उर धरै । होय दिगंबर शिवतिय बरै ॥४०॥

अथ तपाचाराधारणविधि ।

अहो दुवादश तप आचारा । **अनशन अवमोदर्य** उदारा ।
व्रतपरिसंख्या रसपरित्यागी । विवकित[1]सज्यासन बड़भागी
कायकलेश छ बाहिज[2] येहा । **प्राँच्छित[3] विनय** सकल गुनगेहा ॥
वैयाव्रतरत नित **स्वाधाये** । ध्यानसहित **व्युतसर्ग[4]** बताये ४२
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नही ।
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ॥४३॥
तुव प्रसाद सीझै ममकाज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
उभयभेद तप खेद न धरै । महा हरष मनमें विसतरै ॥४४॥

अथ वीर्याचारावधारणविधि ।

अहो सुशकति बढ़ावनिहार । वीर्याचार अचारअधार ।
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नही ॥४५॥
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ॥
तुव प्रसाद सीझै मम काज । यों करि विनय गहै गुन साज॥४६॥

दोहा ।

पंचाचार पुनीतको, इहिविधि धारै धीर ।
और कथन आगे सुनो, जो मेटै भवपीर ॥ ४७ ॥

(२)

मनहरण ।

पंचाचारविधिमें प्रवीन जे अचारज जो, मूलोत्तर गुनकरि

१ विविक्तशय्यासन । २ बाह्य । ३ प्रायश्चित्त । ४ कायोत्सर्ग ।

पूरित अभंग है। कुल रूप वयकी विशेषताई लिये वृंद,
मुनिनिको प्रियतर लागै सरवंग है॥ तापै यह जाय सिर
नाय कर जोरि कहै, स्वामी मोहि अंगीकार कीजिये उमंग है।
ऐसे जब कहै तब स्वामी अंगीकार करै, तबै वह नयो मुनि
रहै संग संग है॥ ४८॥

अथ आचार्यलक्षण। चौपाई।

पंचाचार आप आचरहीं। औरनिको तामें थिर करहीं।
दोनोंविधिमें परम प्रवीने। निज अनुभव समतारस भीने॥४९॥
जे उत्तमकुलके अवतारी। जिनहिं निशंक नमहिं नरनारी।
रहितकलंक क्रूरता त्यागी। सरलसुभाव सुजसि बड़भागी ५०
हीनकुली नहिं वंदनजोगू। ताके होहि न शुद्धपयोगू।
कुलक्रमके क्रूरादि कुभावैं। हीनकुलीमें अवशि रहावैं॥५१॥
यातैं कुलविशेषताधारी। उचितकुली पावै पद भारी।
अरु जिनकी बाहिज छवि देखी। यह प्रतीति उर होत विशेखी ५२
है इनके घट शुद्धप्रकासा। साम्यभाव अनुभव अभ्यासा।
अंतरंगगत बाहिज दरसै। रूपविशेष यही सुख सरसै॥५३॥
बालक तथा बुढ़ापामाहीं। बुद्धि चपल अरु विकल रहाहीं॥
तिनसों रहित सूरि परधाना। धीर बुद्धि गुन कृपानिधाना५४
जोवनदशा काममद व्यापै। तासों वर्जित अचलित आपै।
यह विशेषता वयक्रमकेरी। ताहि धरैं आचारज हेरी॥५५॥

धरैं सुष्टुवय वर्जितदूषन । शीलसिंधु गुनरतनविभूषन ।
क्रियाकांड सिद्धांतनिके मत । कहि समुझावहिं मुनिजनको सत॥
जो मुनिको दूषन कहुँ लागै । मूलोत्तरगुनमें पद पागै ॥
प्राच्छित देय शुद्ध करि लेही । तातैं अतिप्रिय लागत तेही५७॥
ऐसे आचारजपै जाई । कहे नवीन मुनी शिर नाई ॥
मोकों शुद्धातमको लाहू । हेप्रभु प्रापति करि अवगाहू ॥५८॥
तब आचारज कहहिं उदारा । तोको शुद्धातम अविकारा ।
ताकी लाभ करावनिहारी । यही भगवती दिच्छा प्यारी॥५९॥
ऐसी सुनि सो मन हरषाई । मानहु रंक महानिधि पाई ।
बारबार गुरुको सिरनाई । तब मुनिसंग रहै सो जाई ॥ ६० ॥

(३)

मनहरण ।

मेरे चिनमूरततैं भिन्न परदर्व जिते, तिनको तो मैं न कहूं-भयौ तिहूँकालमें । तेऊ परदर्व मेरे नाहिं जातैं कोई दर्व, काहूको सुभाव न गहत काहू हालमें ॥ तातैं इसलोक विषैं मेरी कछु नाहिं दिखै, मेरो रूप मेरे ही चिदातमाकी चालमें । ऐसे करि निश्चै निज इंद्रिनिको जीति जथा,—जातरूपधारी होत ताको नावों भाल मैं ॥ ६१ ॥

दोहा ।

जथाजातको अर्थ अब, सुनो भविक धरि ध्यान ।
ग्रंथपंथ निर्ग्रंथ जिमि, मंथन करी प्रमान ॥ ६२ ॥

स्वयंसिद्ध जैसो कछुक, है आतमको रूप ।
तैसो निजघटमें धरै, अमल अचल चिद्रूप ॥ ६३ ॥
दूजो अर्थ प्रतच्छ जो, जैसो मुनिपद होय ।
तैसी ही मुद्रा धरै, दरवलिंग है सोय ॥ ६४ ॥
ऐसे दोनों लिंगको, धारत धीर उदार ।
जथाजात ताको कहैं, वरै सोइ शिवनार ॥ ६५ ॥

(४)

अथ द्रव्यलिंगलक्षण । मनहरण ।

जथाजात दर्वलिंग ऐसो होत जहां परमानू परमान परिगहन रहतु है । शीस और डाढ़ीके उपारि डारै केश आप, शुद्ध निरगंथपंथ मंथके गहतु है ॥ हिंसादिक पंच जाके रंच नांहि संचरत, ऐसे तीनों जोग संच संच निबहतु है । देह खेह-खानके सँवारनादि क्रियासेती, रहित विराजै जैसी आगम उकतु है ॥ ६६ ॥

अथ भावलिंग ।

परदर्वमांहिं मोह ममतादि भावनिको, जहां न अरंभ कहूं निरारंभ तैसो है । शुद्ध उपयोग वृंद चेतनासुभावजुत, तीनों जोग तैसो तहां चाहियत जैसो है ॥ परदर्वके अधीन वर्त्तत कदापि नांहिं, आतमीकज्ञानको विधानवान वैसो है । मोखसुखकारन भवोदधि उधारनको, अंतरंगभावरूप जैनलिंग ऐसो है ॥ ६७ ॥

दोहा।

दरवितभावितरूप इमि, जथाजातपद धार ।
अब आगे जो करत है, सुनो तासु विसतार ॥ ६८ ॥

(५)

मनहरण ।

परमगुरू सो दर्वभाव मुनिमुद्रा धारि, जथाजातरूप मन-माहिं हरसत है । गुरूको प्रनाम थुति करै तब बारबार, जाके उर आनँदको नीर वरसत है ॥ मुनिव्रतसहित जे क्रियाको विभेद वृंद, तासुको श्रवनकरि हिये सरसत है । ताहीको गहनकरि ताहीमें सुथिर होत, तबै वह मुनिपद पूरो पर-सत है ॥ ६९ ॥

दोहा ।

परम-सुगुरु अरहंत जिन, तथा अचारज जान ।
जिनपै इन दिच्छा गही, तिनहिं नमै थुति ठान ॥ ७० ॥
सुनि व्रत क्रिया गहन करै, ताहीमें थिर होय ।
तब मुनिपद पूरन लहै, दरवित भावित दोय ॥ ७१ ॥
रागादिक विनु आपको, लखै सिद्धसमतूल ।
परमसमायिककी दशा, तब सो लहै अतूल ॥ ७२ ॥
प्रतिक्रमन आलोचना, प्रत्याख्यान जितेक ।
जति मति श्रुति अनुसार सो, धारै सहितविवेक ॥ ७३ ॥
तीनोंकालविषैं सो मुनि, तीनों जोग निरोध ।
निज शुद्धातम अनुभवै, वरजित क्रियाविरोध ॥ ७४ ॥

तब मुनिपदपूरन तिन्हें, दरवित भावित जान ।
वृंदावन वंदन करत, सदा जोरि जुग पान ॥ ७५ ॥

(६)

मनहरण ।

महाव्रत पंच पंच समिति सु संच पंच, इंद्रिनिको वंच केश लुंचत विराजै है । षडावश्य क्रिया दिगअंबर गहिया जल,-हौंन त्यागि दिया भूमिसैन रैन साजै है ॥ दाँतवन करै नाहिं खड़े ही अहार करै, सोऊ एकै बार प्रान धारनके काजै है । येई अठाईस मूलगुन मुनि पदवीके, निश्चैकरि कही जिनराज महाराजै है ॥ ७६ ॥

तेई मूलगुनविषैं मुनि जो प्रमादी होय, तबै ताकै संजमको छेद भंग होत है । तहां सो अचारज पै जायके प्रनाम करि, मुनिमंडलीके मध्य कहै दोष खोत है ॥ जातैं येई गुन सर्व निर्विकल्प सामायिक, भावरूप मुनिपदवीके मूल जोत है । तातैं जैसे प्राछित बतावै गुरु तैसै करै, फेरि तामें थित होत करत उद्योत है ॥ ७७ ॥

सोना अभिलाषीको जितेक आभरन ताके, सर्वही गहन जोग जातैं सर्व सोना है । परजाय विना कहूं दरव रहत नाहिं, तातै दर्वगाहीको समस्त ही सलोना है ॥ तैसे मुनिपद-वीके मूल अठाईस गुन, मुनिपद धारै ताको सर्वभेद होना है । एको गुन घटै तबै मुनिपद भंग होय, ऐसो जानि सर्व-माहिं सावधान होना है ॥ ७८ ॥

(७)

छप्पय।

तिनको मुनिपद गहनविषैं, जे प्रथमाचारज।
सो गुरुको है नाम, प्रव्रज्यादायक आरज॥
अरु जब संजम छेद, भंग होवै तामाहीं।
जो फिर थापन करै, सो निरयापक कहवाहीं॥
यों दोय भेद गुरुके तहां, दिच्छादायक एक ही।
छेदोपस्थापनके सुगुरु, बाकी होंहिं अनेक ही॥ ७९॥

दोहा।

दिच्छा गहने बाद जो, संजम होवै भंग।
एकदेश वा सर्व ही, ऐसो होय प्रसंग॥ ८०॥
तामें फिर जो थिर करहिं, जतिपथरीतिप्रमान।
ते निर्यापक नाम गुरु, जानो श्रमन सयान॥ ८१॥

(८)

छप्पय।

जो मुनि जतनसमेत, कायकी क्रिया अरंभत।
शयनासन उठि चलन, तथा जोगासन थंभत॥
तहँ जो संजम घात होय, तब सो मुनिराई।
आपु अलोचनसहित, क्रियाकरि शुद्धि लहाई॥
यह बाहिज संजम भंगको, आपुहि आप सुदंडविधि।
करि शुद्ध होहिं आचारमें, जे मुनिवृंद विशुद्धनिधि॥८२॥

जिस मुनिका उपयोग, सुघटमें भंग भया है।
रागादिक मल भाव, रतनमें लागि गया है॥
तिनके हेत उपाय, जो जिनमारगकेमाहीं।
जती क्रियामें अतिप्रवीन, मुनिराज कहाहीं॥
तिनके ढिग जाय सो आपनो, दोष प्रकाशै विनय कर।
जो कहैं दंड सो करै तिमि, तब है शुद्धाचारधर॥ ८३॥

(१२)

मनहरण।

जाके उर आतमीक ज्ञानजोति जगी वृंद, आपहीमें आपको निहारै तिहूँपनमें। संजमके घातकी न बात जाके बाकी रहै, समतासुभाव जाको आवै न कथनमें॥ सदाकाल सर्व परदर्वनिको त्यागैं रहै, मुनिपदमाहिं जो अखंड धीर मनमें। ऐसो जब होय तब चाहै गुरु पास रहै, चाहै सो विहार करै जथाजोग वनमें॥ ८४॥

(१३)

सम्यकदरशनादि अनंतगुननिजुत, ज्ञानके सरूप जो विराजै निजआतमा। ताहीमें सदैव परिवर्तत रहत और, मूलगुनमें है सावधान बातबातमा॥ सोई मुनि मुनिपदवीमें परिपूरन है, अंतरंग बहिरंग दोनों भेद भांतमा। नहीं अविकारी परदर्व परिहारी वृंद, वरै शिवनारी जो विशुद्ध सिद्ध जातमा॥ ८५॥

(१४)

भोजन उपास औ निवास जे गुफादि कहे, अथवा विहारकर्म जहां आचरत हैं। तथा देहमात्र परिग्रह जो विराजै और, गुरु शिष्य आदि मुनिसंग विचरत हैं॥ और पुग्गलीक बृंद वैनकी उमंगमाहिं, चरचा अनेक धर्मधारा वितरत हैं। येते परदर्वनिको बन्यौ सनबंध तऊ, महामुनि ममता न तासमें धरत हैं॥ ८६॥

दोहा।

जो इनमें ममता धरैं, तजि समतारस रंग।
तबही शुद्धपयोगमें, मुनिपदवी है भंग॥ ८७॥
तातैं विगतविकार मुनि, वीतरागता धार।
संगसहित वरतैं तऊ, निजरसलीन उदार॥ ८८॥

(१५)

मनहरण।

जतनको त्यागिकै जु मुनि परमादी होय, आचरन करै विवहार काय करनी। सैनासन बैठन चलन आदि ताकेविषैं, चंचलता धारै जो अशुद्धताकी धरनी॥ तामें सर्वकाल ताको निरंतर हिंसा होत, ऐसे सरवज्ञ वीतरागदेव वरनी। जातैं निज शुद्धभावघातकी बड़ी है हिंसा, तातैं सावधानहीसों शुद्धाचार चरनी॥ ८९॥

दोहा।

जब उपयोग अशुद्धकी, होत प्रबलता चित्त।
तब ही विना जतन मुनी, क्रिया करै सुनि मित्त॥९०॥
तहां शुद्धउपयोगको, होत निरंतर घात।
हिंसा बड़ी यही कही, यातैं मुनिपद घात॥ ९१॥
तातैं जतन समेत निज, शुद्धपयोग सुधार।
सावधान वरतौ सुमुनि, तो पावो भवपार॥ ९२॥

(१६)

छप्पय।

जतन त्यागि आचरन करत, जो मुनिपदधारी।
तहां जीव कोइ मरहु, तथा जीवहु सुखकारी॥
ताकहँ निहचै लगत, निरंतर हिंसादूषन।
वह घातत निजज्ञानप्रान, जो चिदगुनभूषन॥
अरु जो मुनिसमितिविषैं सुपरि,—वरतत हैं तिनके कही।
तनक्रियामाहिं हिंसा लगै, तऊ बंध नाहीं लही॥ ९३॥

दोहा।

हिंसा दोय प्रकार है, अंतर बाहिजरूप।
ताको भेद लिखों यहां, ज्यों भाषी जिनभूप॥९४॥
अंतरभाव अशुद्धकरि, जो मुनि वरतत होय।
घातत शुद्धसुभाव निज, प्रबल सुहिंसक सोय॥९५॥
अरु बाहिज विनु जतन जो, करै आचरन आप।
तहँ परजियको घात हो, वा मति होहु कदाप॥९६॥

अंतर निजहिंसा करै, अजतनचारी धार ।
ताको मुनिपद भंग है, यह निहचै निरधार ॥ ९७ ॥
जे मुनि शुद्धपयोगजुत, ज्ञानप्रान निजरूप ।
ताकी इच्छा करत नित, निरखत रहत सुरूप ॥९८॥
तिनकी कायक्रिया सकल, समितिसहित नित जान ।
तहँ पर कहूँ मरै तऊ, करम न बँधै निदान ॥ ९९ ॥

(१७)

मनहरण ।

जतनसमेत जाको आचरन नाहीं ऐसे, मुनिको तो उपयोग निहचै समल है । सो तो षटकायजीवबाधाकरि बाँधै कर्म, ऐसे जिनचंद वृंद भाषत विमल है ॥ और जो मुनीश सदाकाल मुनिक्रियाविषैं, सावधान आचरन करत विमल है । तहाँ घात होत हू न बँधै कर्मबंध ताकै, रहै सो अलेप जथा पानीमें कमल है ॥ १०० ॥

(१८)

कायक्रियामाहिं जीवघात होत कर्मबंध, होहु वा न होहु यहां अनेकांत पच्छ है । पै परिग्रहसों ध्रुवरूप कर्मबंध बँधै, यह तो अबाधपच्छ निहचै विलच्छ है ॥ जातैं अनुराग विना याको न गहन होत, याहीसेती भंग होत संजमको कच्छ है । ताहीतैं प्रथम महामुनि सब त्यागैं संग, पावैं तब उभैविधि संजम जो स्वच्छ है ॥ १०१ ॥

अंतरके भाव विना कायहीकी क्रियाकरि, संगको गहन नाहिं काहू भाँति होत है। अरहंत आदिने प्रथम याको त्याग कीन्हों, सोई मग मुनिनिकों चलिबो उदोत है॥ शुद्धभाव घातो भावै रातो परिग्रहमाहिं, दोऊ शुद्धसंजमको घाति मूल खोत है। ऐसो निरधार तुम थोरेहीमें जानो वृंद, याके धारे जागै नाहिं शुद्ध ज्ञानजोत है॥ १०२॥

(१९)

रूपसवैया।

अंतर चाहदाह परिहरकरि, जो न तजै परिगहपरसंग।
सो मुनिको मन होय न निरमल, संजम शुद्ध करत वह भंग॥
मन विशुद्ध विनु करम कटैं किमि, जे प्रसंगवश बँधे कुढंग।
तातैं तिलतुष मित हु परिग्रह, तजहिं सरव मुनिवर सरवंग१०३

(२०)

मनहरण।

कैसे सो परिग्रहके होत संत अंतरमें, ममता न होय यह कहां संभवत है। कैसे ताके हेतसों उपाय न अरंभै औ, असंजमी अवस्थाको सो कैसे न पवत है॥ तथा परदर्वविषैं रागी भयौ कैसे तब, शुद्धातम साधै सुधा रस भोगवत है। यातैं वीतरागी होय त्यागि परिग्रह निरारंभ होय शुद्धरूप साधो सिखवत है॥ १०४॥

दोहा ।

परिगहनिमित ममत्तता, जो न हियेमहँ होय ।
तब ताको कैसे गहै, देखो मनमें टोय ॥ १०५ ॥
परिगह होते होत ध्रुव, ममता और अरंभ ।
सो घातत सुविशुद्धमय, जो मुनिपद परबंभ ॥ १०६ ॥
तातैं तिलतुष परिमित हु, तजौ परिग्रह मूल ।
इहि जुत जानों सुमुनिपद, ज्यों अकाशमें फूल ॥१०७॥
तातैं शुद्धातमविषैं, जो चाहो विश्राम ।
तो सब परिगहत्यागि मुनि, होहु लहौ शिवधाम ॥१०८॥

(२१)

चौपाई ।

गहन-तजन-मग सेवनहारे । जे मुनि सुपरविवेक सुधारे ।
सो जिस परिगह धारन कीने । होय न भंग जु मुनिपद लीने१०९
देशकालको लखिके रूपं । वरतहु जिमि भाषी जिनभूपं ।
अट्ठाईस मूलगुनमाहीं । दोष कदापि लगै जिमि नाहीं ॥११०॥

दोहा ।

इत शंका कोई करत, मुनिपद तो निरगंथ ।
तिनहिं परिग्रहगहन तुम, क्यों भाषत हौ पंथ॥१११॥
मुनिमग दोय प्रकार कहि, प्रथमभेद उतसर्ग ।
दुतिय भेद अपवाद है, दोउ साधत अपवर्ग ॥११२॥

चौपाई।

मुनि उतसर्ग-मार्गकेमाहीं। सकल परिग्रह त्याग कराहीं॥
जातैं तहां एक निजआतम। सोई गहनजोग चिदगातम॥ ११३॥
तासों भिन्न और पुदगलगन। तिनको तहां त्याग विधिसों भन।
शुद्धपयोगदशा सो जानौ। परमवीतरागता प्रमानौ॥ ११४॥
अब अपवाद सुमग सुनि भाई। जाविधिसों जिनराज बताई॥
जब परिग्रहतजि मुनिपद धरई। जथाजातमुद्रा आदरई॥ ११५॥
तब वह वीतरागपद शुद्धी। ततखिन दशा न लहत विशुद्धी॥
तब सो देशकालकहँ देखी। अपनी शकति सकल अवरेखी ११६॥
निज शुद्धोपयोगकी धारा। जो संजम है शिवदातारा।
तासु सिद्धिके हेत पुनीती। जो शुभरागसहित मुनिरीती॥
गहै ताहि तब ताके हेतो। बाहिजसंजम साधन लेतो।
जे मुनिपदवीके हैं साधक। मुनिमुद्राके रंच न बाधक॥ ११८॥
शुद्धपयोगसुधारन कारन। आगम-उकत करैं सो धारन।
दया ज्ञान संजम हित होई। अपवादी मुनि कहिये सोई॥ ११९॥

(२२)

मनहरण।

जौन परिग्रह कर्मबंधको करत नाहिं, असंजमवंत जाको जाँचै न कदाही है। ममता अरंभ आदि हिंसासों रहित होय, सोऊ थोरो मुनिहीके जोग ठहराहीं है॥ दया ज्ञान संजमको साधक सदीव दीखै, संजम सरागहीमें जाकी परछाहीं

है। अपवादमारगी मुनिको उपदेश यही, ऐसो परिग्रह तुम राखो दोष नाहीं है ॥ १२० ॥

दोहा।

यामें हेत यही कहत, पीछी पोथी जानु।
तथा कमंडलुको गहन, यह सरधा उर आनु ॥१२१॥
शुभपरनति संजमविषैं, इनको है संसर्ग।
ताहींतैं इनको गहत, अपवादी मुनिवर्ग ॥ १२२ ॥

(२३)

अहो भव्यवृंद जहां मोक्षअभिलाषी मुनि, देहहूको जानत परिग्रह प्रमाना है। ताहूसों ममत्तभाव त्यागि आचरन करै, ऐसे सरवज्ञवीतरागने बखाना है ॥ तहां अब कहो और कौन सो परिग्रहको, गहन करेंगे जहां त्यागहीको बाना है। ऐसो शुद्ध आतमीक पर्मधर्मरूप उत-सर्गमुनि मारगको फहरै निशाना है ॥ १२३ ॥

(२४)

कायाको अकार जथाजात मुनिमुद्रा धरै, एक तो परिग्रह यही कही जिनंद है। फेर गुरुदेव जो सुतत्त्वउपदेश करैं सोऊ पुग्गलीक वैन गहत अमंद है ॥ बड़ेनिके विनैमें लगावै पुग्गलीक मन, तथा श्रुति पढ़ै जो सुपुग्गलको छंद है। येते उपकर्न जैनपंथमें हैं मुनिनिके, तेऊ सर्व परिग्रह जानो भविवृंद है ॥ १२४ ॥

दोहा ।

एक शुद्धनिजरूपतैं, जेते भिन्न प्रपंच ।
ते सब परिग्रह जानिये, शुद्धधर्म नहिं रंच ॥ १२५ ॥
तातैं इनको त्यागिके, गहो शुद्धउपयोग ।
सो उतसर्ग--सुमग कहो, जहँ सुभावसुखभोग॥१२६॥

(२५)

मनहरण ।

जैसे घटपटादि विलोकिवेको भौनमाहिं, दीपविषैं तेल घालि बाती सुधरत है। तैसें ज्ञानजोतिसों सुरूपके निहारिवेको, आहार विहार जोग कायाकी करत है ॥ यहां सुखभोगकी न चाह परलोकहूके, सुखअभिलाषसों अबंध ही रहत है। रागादिकषायनिकों त्यागे रहै आठों जाम, ऐसो मुनि होय सो भवोदधि तरत है ॥ १२७ ॥

(२६)

जाको चिनमूरत सुभावहीसों काहू काल, काहू परदर्वको न गहै सरधानसों । यही ताके अंतरमें अनसन शुद्ध तप, निहचै विराजै बृंद परमप्रमानसों ॥ जोग निरदोष अन्न भोजन करत तऊ, अनाहारी जानो ताको आतमीक ज्ञानसों । तैसे ही समितिजुत करत विहार ताहि, अविहारी मानो महामुनि परधान सो ॥ १२८ ॥

(२७)

मुनिमहाराजजूके केवल शरीरमात्र, एक परिग्रह यह ताको

न निषेध है। ताहूसों ममत्त छाँरि वीतरागभाव धारि, अजोग अहारादिको त्यागैं ज्यों अमेध है ॥ नाना तपमाहिं ताहि नितही लगाये रहैं, आतमशकतिको प्रकाशत अवेध है। सोई शिवसुंदरी स्वयंवरीविधानमाहिं, मुनि वर होय वृंद 'राधावेध' बेध है ॥ १२९ ॥

(२८)

एक बार ही अहार निश्चै मुनिराज करैं, सोऊ पेट भरैं नाहिं ऊनोदरको गहै। जैसो कछू पावैं तैसो अंगीकार करैं वृंद, भिच्छाआचरनकरि ताहूको नियोग है॥ दिनहीमें खात रस आस न धरात मधु, मांस आदि सरवथा त्यागत अजोग है। देहनेह त्यागि शुद्ध संजमके साधनको, ऐसोई अहार शुद्ध साधुनिके जोग है ॥ १३० ॥

चौपाई ।

एकै बार अहार बखाने। तासुहेत यह सुनो सयाने।
मुनिपदकी सहकारी काया। तासु सुथित यातैं दरसाया ॥१३१॥
अरु जो बारबार मुनि खाई। तबहि प्रमाददशा बढ़ि जाई।
दरवभावहिंसा तब लागै। संजमशुद्ध ताहि तजि भागै॥१३२॥
सोऊ रागभाव तजि लेई। तब सो जोग अहार कहेई ॥
तातैं वीतरागताधारी। ऐसे साधु गहैं अविकारी ॥ १३३ ॥
जो भरि उदर करै मुनिभोजन। तो है शिथिल न सधै प्रयोजन ॥
जोगमाहिं आलस उपजावै। हिंसा कारन सोउ कहावै ॥१३४॥

तातैं ऊनोदर आहारो । रागरहित मुनिरीति विचारो ॥
सोई जोग अहार कहा है । संजमसाधन साध गहा है ॥१३५॥
जथालाभको हेत विचारो । आपु कराय जु करै अहारो ॥
तब मनवांछित भोजन करई । इंद्रियराग अधिक उर धरई १३६
हिंसादोष लगै ध्रुव ताके । संजमभंग होहिं सब वाके ॥
तातैं जथालाभ आहारी । मुनिकहँ जोग जानु निरधारी १३७
भिच्छाकरि जो असन बखानै । तहां अरंभ दोष नहिं जानै ।
ताहूमें अनुराग न धरई । सोई जोग अहार उचरई ॥ १३८ ॥
दिनमें भलीभांति सब दरसत । दया पलै हिंसा नहिं परसत ।
रैनअसन सरवथा निषेधी । दिनमें जोग अहार अवेधी॥१३९॥
जो रसआस धरै मनमाहीं । तो अशुद्ध उर होय सदाही ॥
अंतरसंजमभाव सु घाते । तातैं रसइच्छा तजि खाते ॥१४०॥
मद्यमांस अरु शहदअपावन । इत्यादिक जे वस्तु घिनावन ॥
तिनको त्याग सरवथा होई । सोई परमपुनीत रसोई ॥१४१॥
सकलदोष तजि जो उपजै है । सोई जोग अहार कहै है ॥
वीतरागता तन सो धारी । गहै ताहि मुनिवृंद विचारी॥१४२॥

(२९)

द्रुमिला ।

जिन वालपने मुनि भार धरे, अथवा जिनको तन वृद्ध अती ।
अथवा तप उग्रतैं खेद जिन्हें, पुनि जो मुनिको कोउ रोग हती ॥

तब सो मुनि आतमशक्ति प्रमान, चरो चरिया निजजोग गती।
गुनमूल नहीं जिमि घात लहै, सो यही जतिमारग जानु जती॥

दोहा।

अतिकठोर आचरन जहँ, संजमरंग अभंग।
सोई मग उतसर्गजुत, शुद्धसुभाव-तरंग॥ १४४॥
ऐसी चरिया आचरैं, तेई मुनि पुनि मीत।
कोमलमगमें पग धरैं, देखि देहकी रीत॥ १४५॥
निज शुद्धातमतत्त्वकी, जिहि विधि जानै सिद्ध।
सोई चरिया आचरैं, अनेकांतके वृद्ध॥ १४६॥
अरु जे कोमल आचरन, आचरहीं अनगार।
तेऊ पुनि निज शकति लखि, करहिं कठिन आचार॥१४७॥
संजमभंग न होय जिमि, रहैं मूलगुन संग।
शुद्धातममें थिति बढ़ै, सोइ मग चलहि अभंग॥ १४८॥
कठिनक्रिया उतसर्गमग, कोमलमग अपवाद।
दोनों मग पग धारहीं, सुमुनि सहितमरजाद॥ १४९॥
जब जैसी तनकी दशा, देखहिं मुनि निरगंथ।
तब तैसी चरिया चरैं, सहित मूलगुन पंथ॥ १५०॥
जो दोनों मगकेविषैं, होय विरोधप्रकास।
तो मुनिमारग नहिं चलै, समुझो बुद्धिविलास॥ १५१॥
ज्यों दोनों पगसों चलत, मारग कटत अमान।
त्यों दोनों मग पग धरत, मिलत वृंद शिवथान॥ १५२॥

(३०)

मनहरण ।

नानाभांति देशको सुभाव पहिचानि पुनि, शीतग्रीषमादि-रितु ताहूको परखिकै ॥ तथा कालजनित सु खेदहूको वेदि औ, उपासकी शकति वृंद ताहूको निरखिकै॥ येई भेद भली भाँति जानकरि अहो मुनि, आहारविहार करो संजम सु रखिकै। जामें कर्मबंध अल्प बँधै ताही विधिसेती, आच-रन करो अनेकांत रस चखिकै ॥ १५३ ॥

चौपाई ।

जे उतसर्गमार्गके धारी। ते देशरु कालादि निहारी ॥
बाल वृद्ध खेदित रुजमाहीं। मुनि कोमल आचरनकराहीं॥ १५४॥
जामें संजम भंग न होई। करमप्रबंध बँधै लघु सोई ॥
शकति लिये न मूलगुन घातै। यहु मग तिनको उचित सदातै॥
अरु जे अपवादिकमग ध्याता। सब विधि देशकालके ज्ञाता ॥
ते मुनि चारिहु दशामँझारी। होउ सुजोग अहारविहारी १५६
संजमरंग भंग जहँ नाहीं। ताही विधि आचरहु तहाँ ही ॥
शकति न छोपि न मूलहु घातो। अलपबंधकी क्रिया करातो ॥

दोहा ।

कोमल ही मगके विषैं, जो इकंत बुधि धार।
अनुदिन अनुरागी रहै, अरु यह करै विचार ॥ १५८ ॥

कोमलहू मग तो कही, जिन सिद्धांतमँझार।
हम याही मग चलहिंगे, यामें कहा विगार॥ १५९॥
तो वह हठग्राही पुरुष, संजमविमुख सदीव।
शकति लोपि करनी करत, शिथिलाचारी जीव॥ १६०॥
ताको मुनिपद भंग है, अनेकांतच्युत सोय।
बाँधै करम विशेष सो, शुद्ध सिद्ध किमि होय॥ १६१॥
अरु जे कठिनाचार ही, हठकरि सदा करात।
कोमल मग पग धारतें, लघुता मानि लजात॥ १६२॥
देशकालवपु देखिकै, करहिं नाहिं आचार।
अनेकांतसों विमुख सो, अपनो करत विगार॥ १६३॥
वह अतिश्रमतैं देह तजि, उपजैं सुरपुर जाय।
संजम अम्रत वमन करि, करम विशेष बँधाय॥ १६४॥
तातैं करम बँधै अलप, सधै निजातम शुद्ध।
सोई मग पग धारिबो, संजमसहित विशुद्ध॥ १६५॥
है सरवज्ञ जिनिंदको, अनेकांत मत मीत।
तातैं दोनों पंथसों, हे मुनि राखो रीत॥ १६६॥
कहुँ कोमल कहुँ कठिन व्रत, कहुँ जुगजुत वरतंत।
शुद्धातम जिहि विधि सधै, वह मुनिमग सिद्धंत॥१६७॥
संजमभंग बचायकै, देश काल वपु देखि।
कोमल कठिन क्रिया करो, करम न बँधै विशेखि॥१६८॥

अरु अस हठ मति राखियो, संजम रहै कि जाहि ।
हम इक दशा न छाँड़ि हैं, सो यह जिनमत नाहि ॥१६९॥
जैसो जिनमत है सोई, कहो तुम्हैं समुझाय ।
जो मगमें पग धारि मुनि, पहुंचे शिवपुर जाय ॥ १७० ॥
कहूं अकेलो है यही, जो मारग अपवाद ।
कहूं अकेलो लसतु है, जो उतसर्ग अनाद ॥ १७१ ॥
कहुं उतसर्गसमेत है, यहु मारग अपवाद ।
कहुं अपवादसमेत है, मगउतसर्ग अवाद ॥ १७२ ॥
ज्यों संजमरच्छा वनत, त्यों ही करहिं मुनीश ।
देशकालवपु देखिकै, साधहिं शुद्ध सुईश ॥ १७३ ॥
पूरव जे मुनिवर भये, ते निजदशानिहार ।
दोनों मगकी भूमिमें, गमन किये सुविचार ॥ १७४ ॥
पीछे परमुतकिष्ट पद, ताहि ध्याय मुनिराय ।
क्रियाकांडतैं रहित ह्वै, शुद्धातम लव लाय ॥ १७५ ॥
निज चैतन्यस्वरूप जो, है सामान्यविशेष ।
ताहीमें थिर होयके, भये शुद्ध सिद्धेश ॥ १७६ ॥
जो या विधिसों और मुनि, ह्वै सुरूपमें गुप्त ।
सो निजज्ञानानंद लहि, करै करमको लुप्त ॥ १७७ ॥
यह आचारसुविधि परम, पूरन भयौ अमंद ।
मुनिमगको सो जयति जय, वंदत वृंद जिनिंद ॥१७८॥

अधिकारान्तमंगळ ।

मंगलदायक परमगुरु, श्रीसरवज्ञ जिनिंद ।
वृंदावन वंदन करत, करो सदा आनंद ॥ १७९ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृंदावन अग्रवाल काशीवासीकृत भाषाविषैं आचारविधिचारित्राधिकार नामा सातयां अधिकार संपूरन भया ।

मिति पौष शुक्ल अष्टमी ८ मंगलवार सं० १९०५ पांच काशीमध्ये निजहस्ते लिखितं वृन्दावनेन स्वपरोपकाराय । इहां ताईं सर्वगाथा २३२ अर भाषाके सर्व छंद ९०६ नवसे छह सो जयवंत होहु । श्रीरस्तु मंगलमस्तु ॥ ॥ ॥ ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथाष्टम एकाग्ररूपमोक्षमार्गाधिकारः ।

मंगलाचरण । दोहा ।

सिद्धशिरोमनि सिद्धप्रद, वंदों सिद्ध महेश ।
सो इत नित मंगल करो, मैटो विघन कलेश ॥ १ ॥
सम्यकदरशन ज्ञान व्रत, तीनों जत्र इकत्र ।
सोई शिवमग नियतनय, है शुद्धातम तत्र ॥ २ ॥
तथा जिन्हें यह लाभ हुव, ऐसे जे मुनिराज ।
तिनहूको शिवमग कहिय, धरमी धरम समाज ॥ ३ ॥
तासु परापतिके विषैं, जिनआगमको ज्ञानि ।
अवशि चाहिये तासतैं, अभ्यासो जिनवानि ॥ ४ ॥

(१)

मनहरण ।

सम्यकदरश ज्ञान चारितकी एकताई, येही शुद्ध तीरथ त्रिवैनी शिवमग है । ताकी एकताई मुनि पाई जब सुपर, पदारथको भलीभाँति जानत उमग है ॥ ऐसो भेदज्ञान जिन-आगमहीसेती होत, संशयविमोह ठग लागै नाहिं लग है । ताहीनैं जिनागम अभ्यास परधान कह्यौ, जाकी अनेकांत जोत होत जगमग है ॥ ५ ॥

सरवज्ञभाषित सिद्धांत विनु वस्तुनिको, जथारथ निहचै न होत सरवथा है । विना सर्वदर्वनिको भलीभाँति जानै कहो,

कैसे निज आतमाको जानै श्रुति मथा है । याहीतैं मुनिंदवृंद शब्दब्रह्मको अभ्यासि, आपरूप जानि तामें होहि थिर जथा है ॥ तातैं शिवमारगको मूल जिन आगम है, ताको पढ़ो सुनो गुनो यही सार कथा है ॥ ६ ॥

दोहा ।

जे जन जिनशासनविमुख, बहिरमुखी ते जीव ।
डाँवाडोल मिथ्यातवश, भटकत रहत सदीव ॥ ७ ॥
करता बनत त्रिलोकके, कबहुँ भोगता होहि ।
इष्टानिष्ट विभावजुत, सुथिर न कबहूँ सोहि ॥ ८ ॥
ज्यों समुद्रमें पवनतैं, चहुँदिशि उठत तरंग ।
त्यों आकुलतासों दुखित, लहैं न समरसरंग ॥ ९ ॥
जब अपनेको जानई, ज्ञानानंदसरूप ।
तब न कबहुँ परदरवको, करता बनै अनूप ॥ १० ॥
जो आतम निज ज्ञानकरि, लोकालोक समस्त ।
प्रगट पानकरि आपमें, सुथिर रहत परशस्त ॥ ११ ॥
ऐसो जो भगवान यह, चिदानंद निरद्वंद ।
सो जिनशासनतैं लखहिं, महामुनिनिके वृंद ॥ १२
तब ताको सरधान अरु, ज्ञान जथारथ धार ।
ताहीमें थिर होयके, पावैं पद अविकार ॥ १३ ॥
तातैं जिनआगम बड़ो, उपकारी पहिचान ।
ताको वृंद पढ़ो सुनो, यह उपदेश प्रधान ॥ १४

(२)

मत्तगयन्द ।

जो मुनिको नहिं आगमज्ञान, सो तो निज औ परको नहिं जानै ।
आपु तथा परको न लखै तब, क्यों करि कर्म कुलाचल भानै ॥
जासु उदै जगजालविषैं, चिरकाल बिहाल भयो भरमानै ।
तातैं पढ़ो मुनि श्रीजिनआगम, तो सुखसों पहुंचो शिवथानै १५

कवित्त छन्द ।

जिनआगमसों दरव भाव नो,-करमनिकी हो है तहकीक ।
तब निजभेदज्ञानबलकरिकै, चूरै करम लहै शिव ठीक ॥
तिस आगमतैं विमुख होयकै, चहै जो शिवसुख लहौं अधीक ।
सो अजान विनु तत्त्वज्ञान नित, पीटत मूढ सांपकी लीक १६॥
आगमज्ञानरहित नित जो मुनि, कायकलेश करै तिरकाल ।
ताको सुपरभेद नहिं सूझत, आगम तीजा नयन विशाल ॥
तब तहँ भेदज्ञान विनु कैसे, चलै शुद्ध शिवमारग चाल ।
सो विपरीत रीतकी धारक, गावत तान ताल विनु ख्याल १७

दोहा ।

ज्यों ज्यों मिथ्यामग चलै, त्यों त्यों बंधै सोय ।
ज्यों ज्यों भींजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥ १८ ॥

(३)

सोरठा ।

मचक्षू[२] साघ, अक्षचक्ष[३] जगजीव सब ।

---

१ नेत्र । २ मुनियोंके नेत्र शास्त्र ही हैं । ३ संसारी जी- इन्द्रियां हैं ।

देव औधैदृग लाध, सिद्ध सर्वचक्षू विमल ॥ १९ ॥
तातैं यह उर आनि, अनेकांत जाकी धुजा ।
सो आगम पहिचानि, पढ़ो सुनो भवि वृंद नित ॥ २० ॥
आगम ही हैं नैन, शिवसुखइच्छुक मुनिनिके ।
यों भाषी जिनवैन, स्वपरभेदविज्ञानप्रद ॥ २१ ॥

(४)

माधवी ।

जिनआगममें सब दर्वनिको, गुनपर्जविभेद भली विधि साधा ।
तिस आगमहीतैं महामुनि देखकै, जानै जथारथ अर्थ अगाधा ॥
तब भेदविज्ञान सुनैन प्रमान, निजातम वृंद लहै निरबाधा ।
अपने पदमें थिर होकरिके, अरिको हरिके सु वरै शिवराधा ॥२२॥

जिनवानीमहिमा–मनहरण ।

एक एक दर्वमें अनंतनंत गुन पर्जे, नित्यानित्य लच्छनसों जुदे जुदे धर्म है । ताको जिनवानी ही अबाधरूप सिद्ध करै, हरै महा मोहतम अंतरको भर्म है ॥ ताहीकी सहायतैं सु भेदज्ञाननैन खोलि, जानैं महामुनि शुद्ध आतमको मर्म है सोई जगदंबको अलंब करै वृंदावन, त्यागिके विलंब सदा ऐन पर्म शर्म है ॥ २३ ॥

(५)

प्रथम जिनागम अभ्यासकरि यहां जाके, सम्यक्

१ देवोंके अवधिज्ञानरूपी नेत्र हैं । २ सिद्ध भगवान अर्थात् सबको देखनेवाले हैं । ३ अवलम्बन—आसरा ।

सरधान नाहिं भयौ है । ताके दोऊ भांतिको न संजम विराजै कहूं, ऐसे जिनभाषित सुवेद वरनयौ है ॥ संजम सुभावसों रहित जब भयौ तब, निहचै असंजमीकी दशा परिनयौ है । कैसे तब ताको मुनिपद सोहै वृंदावन, सांची गैल[1] छांड़िके सो कांची गैल लयौ है ॥ २४ ॥

दोहा ।

प्रथम जो आगमज्ञानतैं, रहित होय सरधान ।
भेदज्ञान विनु किमि करै, सो निजपर पहिचान ॥ २५ ॥
तब कषायसंमिलित जो, मोहराग परिनाम ।
ताके वश होकै धरो, विषयकषाय मुदाम ॥ २६ ॥
इंद्रीविषयनिकेविषैं, सो परिवरत[2] कराय ।
छहों कायके जीवको, बाधक तब ठहराय ॥ २७ ॥
स्वेच्छाचारी जीव वह, ताको मुनिपद केम ।
सर्वत्यागको है जहां, मुनिपदवीमें नेम ॥ २८ ॥
तैसे ही पुनि तासुके, निरविकलप समभाव ।
परमातम निज ज्ञानघन, सोऊ नाहिं लखाव ॥ २९ ॥
अरु जे ज्ञेयपदार्थके, हैं समूह जगमाहिं ।
तामें ज्ञान सुछंद तसु, वरतत सदा रहाहिं ॥ ३० ॥
याहीतैं निजरूपमें, होय नहीं एकत्र ।
ज्ञान वृत्त[3] चंचल रहै, परसै सुथिर न तत्र ॥ ३१ ॥

---

१ रास्ता—मार्ग । २ प्रवृत्ति । ३ चारित्र ।

आगमज्ञान सु पुव्व जहँ, होय नहीं सरधान ।
तहां न संजम संभवै, यह अबाध परमान ॥ ३२ ॥
जाके संजम होय नहिं, तब मुनिपद किमि होय ।
शिवमग दूजो नाम जसु, देखो घटमें टोयँ ॥ ३३ ॥
तातैं आगमज्ञान अरु, तत्त्वारथसरधान ।
संजम भाव इकत्र जब, तबहिं मोखमग जान ॥ ३४ ॥

माधवी ।

जिन आगममें नित सात सुभंगकी, वृंद अभंग धुजा फहरावै । जिसको लखिके मुनि भेदविज्ञानि, सुसंजमसंजुत मोच्छ सिधावै । तिहिको तजिके जो सुछंदमती, अति खेद करै हठसों बहु धावै । वह त्यागिके सीखसुधारसको, नित ओसके बूंदसों प्यास बुझावै ॥ ३५ ॥

(६)

मनहरण ।

आगम ही जानै कहो कहा सिद्धि होत जो न, आपापर-माहिं सरधान शुद्ध आय है । तथा सरधान हूं पदारथमें आयौ तो, असंजमदशासों कहो कैसे मोख पाय है ॥ याहीतैं जिनागमतैं सुपरपदारथको, सत्यारथ जानि सरधान दिढ़ लाय है । फेरि शुद्ध संजमसुभावमें सुथिर होय, सोई चिदानंद वृंद, मोक्षको सिधाय है ॥ ३६ ॥

---

१ खोजके ।

तत्त्वनिमें रुचि परतीति जो न आई तो धौं, कहा सिद्ध होत कीन्हें आगम पठापठी। तथा परतीति प्रीति तत्त्वहूमें आई पै न, त्यागे रागदोष तौ तो होत है गठागठी॥ तबै मोखसुख वृंद पाय है कदापि नाहिं, तातैं तीनों शुद्ध गहु छांड़िके हठाहठी। जो तू इन तीन विन मोखसुख चाहै तौ तो, **सूत न कपास करै कोरीसों लठालठी** ॥ ३७ ॥

(७)

आपने सुरूपको न ज्ञान सरधान जाके, ऐसो जो अज्ञानी-ताकी दशा दरसावै है। जितने करमको सो विवहार धर्म-करि, शत वा सहस्र कोटि जन्ममें खिपावै है॥ तिते कर्मको सु आपरूपमें सुलीन होय, ज्ञानी एक स्वासमात्र कालमें जलावै है। ऐसो परधान शुद्ध आतमीकज्ञान जानि, **वृंदावन** ताके हेत उद्यमी रहावै है॥ ३८॥

जाके शुद्ध सहज सुरूपको न ज्ञान भयौ, और वह आगमको अच्छर रटतु है। ताके अनुसार सो पदारथको जानै, सरधानै औ ममत्त लिये क्रियाको अटतु है॥ तहां पुव्व खिरै नित नूतन करम बंधै, गोरखको धंधा नटबाजीसी नटतु है। **आगेको वटत जात पाछे बछेरू[1] चबात, जैसे दृगहीन[2] नर जेवँरी वटतु[3] है** ॥ ३९ ॥

जाने निजआतमाको जान्यो भेदज्ञानकरि, इतनो ही

१ बछड़ा। २ अंधा। ३ रस्सी भांजता है।

आगमको सार अंश चंगा है । ताको सरधान कीनों प्रीतिसों प्रतीति भीनों, ताहीके विशेषमें अभंग रंग रंगा है ॥ बाहीमें त्रिजोगको निरोधिके सुथिर होय, तबै सर्वकर्मनिको क्षपत प्रसंगा है । आपुहीमें ऐसे तीनों साधैं वृंद सिद्धि होत, जैसे **मन चंगा तो कठौतीमाहिं गंगा है ॥ ४० ॥**

(८)

माधवी ।

जिसके तनआदिविषैं ममता, वरतै परमानुहुके परमानी ।
तिसको न मिलै शिव शुद्धदशा, किन हो सब आगमको वह ज्ञानी
अनुराग कलंक अलंकित तासु, चिदंक लसै हमने यह जानी ।
जिमि लोकविषैं कहनावत है, यह **ताँत बजी तब राग पिछानी॥**

दोहा ।

ज्यों करमाहिं विमल फटिक, देख परत सब शुद्ध ।
त्यों मुनि आगमतैं लखहिं, सकल तत्त्व अविरुद्ध ॥ ४२ ॥

तसु ज्ञाता चिद्रूपको, जानि करै सरधान ।
अरु आचार हु करत सो, जतिपथरीतिप्रमान ॥ ४३ ॥

ऐसे आगमज्ञान अरु, तत्त्वारथसरधान ।
संजम भाव इकत्रता, यह रतनत्रयवान ॥ ४४ ॥

सो सूच्छिम हू राग जो, धरै तनादिकमाहिं ।
तिते कलंकहितैं सु तो, शिवपद पावै नाहिं ॥ ४५ ॥

तातैं आगमज्ञानजुत, निरविकलप सु समाधि।
वीतरागतासहित है, तब सब मिटै उपाधि ॥ ४६ ॥

सोरठा।

जाके होय न ज्ञान, चिदानंद चिद्रूपको।
सोई जीव अयान, ममता धरै तनादिमें ॥ ४७ ॥
सो न लहै निरवान, मोह गंसै[1] तसु हंसपर[2]।
गुभ्यौ[3] गुप्त ही आन, भेदज्ञान विनु नहिं लखत ॥ ४८ ॥
तातैं हे बुधिवान, लेहु स्वरूप निहार निज।
चिद्विलास अमलान, तामें थिर हो सिद्ध हो ॥ ४९ ॥

(९)

सवैया-मात्रिक।

जाके पंचसमिति सित सोभत, तीन गुपत उर लसत उदार।
पंचिंद्रिनिको जो संवर करि, जीतै सकल कषायविकार ॥
सम्यकदर्श ज्ञान संपूरन, जाके हिये वृंद दुतिधार।
शुद्ध संजमी ताहि कहैं जिन, सो मुनि वरै विमल शिवनार५०

(१०)

छप्पय।

जो जाने समतुल्य, शक्र अरु बंधुवर्ग निजु।
सुखदुखको सम जानि, गहै समता सुभाव हि जु ॥

---

१ गांसी-फांसी। २ आत्मापर। ३ चुभा है।

थुति निंदा पुनि लोह कनक, दोनों सम जानै ।
जीवन मरन समान मानि, आकुलदल भानै ॥
सोई मुनि बृंद प्रधान है, समतालच्छनको धरै ।
निज साम्यभावमें होय थिर, शुद्ध सिद्ध शिव तिय वरै ॥ ५१ ॥

(११)

मत्तगयन्द ।

जो जन सम्यकदर्शन ज्ञान, चरित्र विशुद्ध सुभाविकमाहीं ।
एकहि वार भली विधिसों, करि उद्यम वर्त्ततु है तिहि ठाहीं ॥
सो निज आतममें लवलीन, इकाग्रदशामहँ प्रापति आहीं ।
है तिनको परिपूरनरूप, मुनीश्वरको पद संशय नाहीं ॥ ५२ ॥

दोहा ।

ज्ञेयरु ज्ञायक तत्त्वको, जहां शुद्ध सरधान ।
सोई सम्यकदरश है, दूषनरहित प्रमान ॥ ५३ ॥
ताहि जथावत जानिबो, सो है सम्यकज्ञान ।
दरशज्ञानमें सुथिरता, सो चारित्र प्रधान ॥ ५४ ॥
येई तीनों भाव हैं, भावक आतम तास ।
आपहि आपु सुभावको, भावै थिर सुखरास ॥ ५५ ॥
इन भावनिके बढ़नकी, जहँ लगु हद्द प्रमान ।
तहँ लगु बढ़हिं परस्पर, सुगुनसहित गुनवान ॥ ५६ ॥
ये तिहुँ भाव सु अंग हैं, अंगी आतम तास ।
अंगी अंग सु एकता, सदा सधत सुखरास ॥ ५७ ॥

इमि एकता सुभाव जो, प्रनयौ आतम आप ।
सोई संजम भाव है, आप रूपमें व्याप ॥ ५८ ॥
सो जद्दिप तिहुँ भेदकरि, है अनेक परकार ।
तद्दिप एक स्वरूप है, निरविकलप नयद्वार ॥ ५९ ॥
जैसे एकपना त्रिविधि, मधुर आमलौ तीत ।
सुरस स्वाद तब मिलत जब, निरविकलप रसप्रीत ॥६०॥
तैसे सो संजम जदपि, रतनत्रयतैं भेद ।
तदपि सुभाविक एकरस, एकै गहै अखेद ॥ ६१ ॥
परदरवनिसों भिन्न नित, प्रगट एक निजरूप ।
ताहि सु मुनिपद कह हुआ, शिवमग कहो अनूप ॥६२॥
सो शिवमगको तीन विधि, परजैनयके द्वार ।
भाषतु हैं विवहारकरि, जाको भेद अपार ॥ ६३ ॥
अरु एकतासरूप जो, शिवमग वरनन कीन ।
दरवार्थिकनय द्वारतैं, सो निहचै रसलीन ॥ ६४ ॥
जेते भेदविकल्प हैं, सो सब हैं विवहार ।
अरु जो एक अभेदरस, सो निहचै निरधार ॥ ६५ ॥
ऐसो शिवमग जानिके, निज आतमहितहेत ।
हे भवि वृंद करो गहन, जो अबाध सुख देत ॥ ६६ ॥

(१२)

छप्पय ।

जिस मुनिके नहिं, सुपरभेदविज्ञान विराजै ।
अज्ञानी तसु नाम, कही जिनवर महाराजै ॥

सो परदर्वहिं पाय, राग विद्वेष मोह धरि ।
विविध करमको बंध, करत अपनो विकारकरि ॥
निज चिदानंदके ज्ञान विनु, शुद्ध सिद्धपद नहिं ठरत ।
सो **पाटकीटके न्यायवत,** नित नूतन बंधन वटत ॥ ६७ ॥

(१३)

सवैया–मात्रिक ।

जो मुनि आतमज्ञान **वृंद** जुत, सो पर दरवनिके जे थंम ।
तिनमें मोहित होत न कबहूँ, करत न राग न दोष अरंम ॥
सो निजरूपमाहिं निहचै थिर, है इकाग्र संजमजुत संम ।
सोई विविध करम छय करिके, देहि मोखमग सनमुख बंम६८

दोहा ।

इहि प्रकार निरधार करि, भाषैं शिवमग पर्म ।
शुद्धपयोगमयी सुमुनि, गहैं लहैं शिवशर्म ॥ ६९ ॥

कवित्त–मात्रिक ।

जाके हिये मोहमिथ्यामत, हे भवि पूर रह्यौ भरपूर ।
कैसहुकै न तजै हठ सो सठ, ज्यों महि गहै गोह पग भूर ॥
जो कहुं सत्य सुनै तउ उरमें, धरै न सरधा अतिहि करूर ।
ताको यह उपदेश अफल जिमि, **कूकरके मुखमाहिं कपूर** ७०
तातैं अब इस कथन मथनको, सुनो सार भवि धरि उपयोग ।
सम्यक दरशन ज्ञानचरितमें, सुथिर होहु जुत शुद्धपयोग ॥

यही सुमुनिपद वृंद अनूपम, यातैं कटैं करमके रोग।
ताकों गहो मिल्यौ यह औसर, जैसे नदी नाव संजोग ७१॥

अधिकारान्तमंगल—दोहा

पूरन भयौ सुखद परम, शिवमग शुद्धसरूप।
बंदों श्रीजिनदेवको, जो लहि कही अनूप ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृंदावन अग्रवाल काशीवासीकृतभाषाविषैं एकाग्ररूप मोक्षमार्गका स्वरूप कथन ऐसा आठवाँ अधिकार पूरा भया। पौष शुद्ध पूरनमासी सोमवार संवत् १९०५।

इहां ताईं सर्व गाथा २४५ अरु भाषाके छंद नवसै अठहत्तर ९७८। सो जयवंत होहु। मंगलमस्तु। श्रीरस्तु।

ओं नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ नवमः शुभोपयोगरूपमुनिपदाधिकारः ।

मंगलाचरण–दोहा ।

श्रीजिनवानी सुगुरु पद, वंदों शीस नवाय ।
सकल विघन जातैं मिटैं, भविक वृंद सुखदाय ॥ १ ॥
अब वरनत शुभभावजुत, मुनि पदवीकी रीति ।
श्रुति मथि गुरु संछेपतैं, करो सुभवि परतीति ॥ २ ॥

(१)

दो विधिके मुनि होहिं इमि, कही जिनागममाहिं ।
एक शुद्धउपयोगजुत, इक शुभमगमें जाहिं ॥ ३ ॥
जे सुविशुद्धपयोगजुत, सदा निरास्रव तेह ।
बाकी आस्रवसहित हैं, शुभ उपयोगी जेह ॥ ४ ॥

द्रुमिला ।

जिनमारगमें मुनि दोय प्रकार, दिगंबररूप विराजत है ।
इक शुद्धपयोग विशुद्ध धरें, जिनतैं करमास्रव भाजत है ॥
दुतिये शुभ भाव दशा सु धरैं, तिनके करमास्रव छाजत है ।
यह भाविक भेद सनातनतैं, जिनआगम या विधि गाजत है ॥
सबही परदर्वनिसों ममता, तजिके मुनिको व्रत धीर धरैं ।
चित चंचल अंशकषाय उदै, नहिं आतम शुद्ध प्रकाश करैं ॥
मुनि शुद्धपयोगिनिके ढिगमें, पुनि जे वरतैं अनुराग भरैं ।
कहिये अब ते मुनि हैं कि नहीं, इमि पूछत शिष्य विनीत वरैं॥

दोहा।

याको उत्तर प्रथमही, ग्रंथारभतमाहिं।
कहि आये हम हैं भविक, पुनि समुझो इहि ठाहिं ॥ ७॥

माधवी।

निज धर्मसरूप जबै प्रनवै, यह आतम आप अध्यातम ध्याता।
तब शुद्धपयोगदशा गहिके, सो लहै निरवान सुखामृत ख्याता ॥
अरु होत जहां शुभरूपपयोग, तहां सुरगादि विभौ मिलि जाता।
यह आपुहि है अपने परिनामनिको, फल भोगनिहार विधाता ॥

दोहा।

शुभपयोगसों और पुनि, शुद्धातम निजधर्म।
तिनसों एक अरथविषैं, है समवाय सुपर्म ॥ ९ ॥
एकातमहीके विषैं, दोनों भाव रहाहिं।
तातैं दोनों भावको, धरम कही श्रुतिमाहिं ॥ १० ॥
याही नयतैं हे भविक, शुभ उपयोगी साध।
तेऊ मुनि हैं पै तिन्हैं, आस्रव कर्म उपाध ॥ ११ ॥
शुद्धपयोगीके नहीं, करमास्रवको लेश।
ते सब कर्म विनाशिकै, होहिं शुद्ध सिद्धेश ॥ १२ ॥

---

१ यह पहले अध्यायकी ग्यारहवीं गाथाका अनुवाद है, जो कि-पहले अध्याय में छप चुका है (पृष्ठ २० में) अन्तर इतना है कि, वहां छन्द मत्तगयन्द था, यहां प्रत्येक चरणमें दो दो लघु (निज, तब, अरु, यह) डालकर माधवी बना दिया है।

(२)

रूपसवैया ।

जो मुनिके उर अंतरमाहीं, यह परनति वरतै मुनि भव्वै[1] ।
अरहंतादि पंचगुरुपदमें, भगत उमंग रंग रसतव्व ॥
तथा परम आगम उपदेशक, तिनसों वच्छलैता[2] विनु गव्वै[3] ।
सो शुभरूप कहावत चरियाँ[4], यों वरनी जिनगनधर पव्व ॥

छप्पय ।

जो परिगह परिहार, सुमुनिमुद्राको धारै ।
पै कषायके अंश, तासुके उदय लगारै ॥
तातैं शुद्धस्वरूपमाहिं, थिरता नहिं पावै ।
तब पन शुद्धस्वरूप, सुगुरुसों प्रीति बढ़ावै ।
अरु जे शुद्धातमधरमके, उपदेशक तिनमें हरखि ।
वर भक्ति सु सेवा प्रीतिजुत, बरततु है मुनिमग परखि ॥१४॥

सोरठा ।

तिस मुनिके यह जानु, इतनहिं राग सु अंशकरि ।
पर दरवनिमें मानु, है प्रवृत्ति निहचैपनै ॥ १५ ॥
सो शुद्धातमरूप, ताकी थिरतासों चलित ।
यों भाषी जिनभूप, वह शुभभावचरित्रधर ॥ १६ ॥
पंच परमगुरुमाहिं, भगत सु सेवा प्रीति जहँ ।
सो शुभमग कहलाहिं, शुभ उपयोगिनिके चिहन ॥ १७ ॥

---

१ भव्य । २ वत्सलता । ३ गर्व—अभिमान । ४ चर्या—वृत्ति ।

(३)

मनहरण ।

महामुनिराजनिकी वानीसेती थुति करै, कायासेती नुति करै महामोद भरी है। आवत विलोकि उठि खड़े होहि विनै धारि, चालै तब पीछै चलै शिष्यभाव धरी है ॥ तिनके शरीरमाहिं खेद काहू भाँति देखै, ताको दूर करै जथाजोग विसतरी है। सराग चरित्रकी अवस्थामाहिं मुनिनिको, येती क्रिया करिवो निषेध नाहिं करी है ॥ १८ ॥

दोहा ।

शुभ उपयोगी साधुको, ऐसो वरतन जोग ।
शुद्धुपयोगी सुमुनि प्रति, जहँ आतमनिधिभोग ॥ १९ ॥
जो श्रीमहामुनीशके, कहुँ उपसर्गवशाय ।
खेद होय तो सुथिर-हित, वैयावृत्ति कराय ॥ २० ॥
जातैं खेद मिटै बहुरि, सुथिर होय परिनाम ।
तब शुद्धातम तत्त्वको, ध्यावैं मुनि अभिराम ॥ २१ ॥
शुद्धातमके लाभतैं, रहित जु मिथ्यातीय ।
ताकी सेवादिक सकल, यहां निषेध करीय ॥ २२ ॥

(४)

मत्तगयन्द ।

सम्यकदर्शन ज्ञान दशा, उपदेश करैं भविको भवतारी ।
शिष्य गहैं पुनि पोषहिं ताहि, भली विधिसों धरमामृतधारी ॥

श्रीजिनदेवके पूजनको, उपदेश करैं महिमा विसतारी ।
है यह रीति सरागदशामहँ, वृंद मुनिंदनिको हितकारी॥२३॥

दोहा ।

शुद्धुपयोगीके परम, वीतरागता भाव ।
तातैं तिनके यह क्रिया, होत नाहिं दरसाव ॥ २४ ॥

(५)

मत्तगयंद ।

जामहँ जीव विरोध लहै नहिं, ताविधिसों नितही विधि ज्ञाता ।
चारि प्रकारके संघ मुनीशको, ताको करै उपकार विख्याता ॥
आपने संजमको रखिके, निहचै सबके सुखदायक ताता ।
या विधि जो वरतै मुनि सो, परधान सरागदशामहँ आता२५

दोहा ।

श्रावक अरु पुनि श्राविका, मुनि अरजिका प्रमान ।
येई चारों संघके, स्वामी सुमुनि सयान ॥ २६ ॥
शुद्धातमअनुभूतिके, ये साधक चहुसंग ।
तातैं नित रच्छा करहिं, इनकी सुमुनि उमंग ॥ २७ ॥
वैयावृत्तादिक क्रिया, जा विधि बनै उदार ।
ताही विधिसों करत हैं; ते सराग अनगार ॥ २८ ॥
हिंसा दोष बचायके, अपनो संजम राख ।
संघानुग्रहमें रहैं, सो प्रधान मुनि भाख ॥ २९ ॥

(६)

कवित्त–मात्रिक ।

जो मुनि और मुनिनिके कारन, वैयावरत करनके हेत ।
छहों कायको बाधक हो करि, उद्यमवान होय वरतेत ॥
तो सो मुनि न होय यह जानो, है वह श्रावक सुविधि समेत ।
जातैं वह अरंभजुत मारग, श्रावकधरममाहिं छबि देत ॥३०॥

कुंडलिया ।

तातैं जे केई सुमुनि, गहैं सराग चरित्त ।
ते परमुनिको खेद लखि, ठानौ वैयावृत्त ॥
ठानौ वैयावृत्त तहां, निज संजम राखो ।
परकी करो सहाय; जथा जिनश्रुतिमें भाखो ॥
षटकाया सविरोध, क्रिया गृहमध्य करातैं ।
मुनिको सुपद बचाय, उचित परहितकृत तातैं ॥ ३१ ॥

(७)

माधवी ।

जिनशासनके अनुसार धरें व्रत, जे मुनिराय तथा गृहवासी ।
तिनको उपकार करो सु दया धरि, त्यागि हिये फलकी अभिलासी॥
इहि भाँति किये जदि जो तुमको, शुभकर्म बँधै कछु तो नहिं हांसी
यह रीति सरागचरित्रविषैं, है सनातन वृंद जिनिंद प्रकासी ॥३२॥

(८)

मनहरण ।

कहूँ काहू मुनिको जो रोगसों विथित देखो, तथा भूख

प्यासकरि देखो जो दुचित है । तथा काहू भाँतिकी परीषहके जोगसेती, कायमें कलेश काहू मुनिके कुचित[1] है ॥ तहां तुम आपनी शकतिके प्रमान मुनि, ताकी वैयावृत्ति आदि करो जो उचित है । जातैं वह साध निरुपाध होय वृंदावन, सहजसमाधमें अराधै जो सुचित[2] है ॥ ३३ ॥

(९)

रोगी मुनि अथवा अचारज सुपूज गुरु, तथा बाल वृद्ध मुनि ऐसे भेद वरनी । तिनकी सहाय सेवा आदि हेत मुनिनिको, लौकिक जनहूसों सुसंभाषन करनी ॥ जामें तिन साधनके खेदको विछेद होय, ऐसे शुभ भावनिसों वानीको उचरनी । सराग आनंदमें अनिंद वृंद विधि यह, सुपरोपकारी बुधि भवोदधितरनी ॥ ३४ ॥

(१०)

यह जो प्रशस्त रागरूप आचरन कहो, वैयावृत्त आदि सो तो बड़ोई धरम है । मुनिमंडलीमें यह गौनरूप राजै जातैं, तहां रागभाव मंद रहत नरम है ॥ श्रावक पुनीतके बड़ोई धरमानुराग, तातैं तहां उतकिष्ट मुख्यता परम है । ताहीकरि परंपरा पावै सो परम सुख, निहचै बखानी श्रुति यामें ना भरम है ॥ ३५ ॥

---

१ क्वचित्–कहीं । २ चित्स्वरूप आत्मा ।

(११)

कवित्त ।

यह प्रशस्त जो रागभाव सो, वस्तु विशेष जो पात्रविधान ।
तिनको जोग पायकरि सोई, फल विपरीत फलत पहिचान ॥
ज्यों कृषि समै विविध धरनी तहँ, अविधि धरनिमहँ बीज बुवान ।
सो विपरीत फलत फल निहचै, कारन सम कारज परमान ३६

(१२)

मनहरण ।

छदमस्थ बुद्धीने जो आपनी उकतिहीसों, देव गुरु धर्मादि पदारथ थापै है । व्रत नेम ध्यानाध्येन दानादि बखाने तहां, तामें जो सुरत होय प्रीति करि व्यापै है ॥ तासों मोख-पद तो सरवथा न पावै पै, उपावै पुन्यरूप भावबीज यों अलापै है । ताको फल भोगै देव मानुष शरीर धरि, फेरि सो जगतहींमें तपै तीनों तापै है ॥ ३७ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

वीतराग सरवज्ञदेवकरि, जो भाषित है वस्तुविधान ।
देवधर्म गुरु ग्रंथ पदारथ, तिनमें जो प्रतीति रुचिवान ॥
सो शुभरागभाव वृंदावन, निश्चयसों कीजो सरधान ।
ताको फल साच्छात पुन्य है, परंपरा दे है शिवथान ॥३८॥

दोहा ।

तातैं गहि भवि वृंद अब, अनेकांतको सर्न ।
ताहीके अनुसार करि, शुभपयोग आचर्न ॥ ३९ ॥

ताको फल साच्छात लहि, पुन्यरूप सुखवृंद ।
परंपरासों मोखपद, पैहै आनँदकंद ॥ ४० ॥

(१३)

मनहरण ।

शुद्ध परमातम पदारथको जानै नाहिं, ऐसे जे अज्ञानी जीव जगमें बखाने हैं । जाके उर विषय कषाय भूरि भरि रह्यौ, ऐसे जगजंतको जे गुरुकरि माने हैं ॥ तिन्हैं भक्ति भावसेती सेवें अति प्रीति धारि, आहारादि दान दै हरष हिय आने हैं । ताको फल भोगैं सो कुदेव कुमनुष होय, रुलैं जग जालमें सो मूरख अयाने हैं ॥ ४१ ॥

आतमीक ज्ञान वीतराग भाव जाके नाहिं, तथा याकी कथा हू न रुचै रंच भरी है । मिथ्यामत माते नित विषयकषाय राते, ऐसेको जो गुरू मानि सेवै प्रीति धरी है ॥ आहारादि दान दै प्रधान पद माने निज, जाने मूढ़ सही मोहि यही निसतरी है । दोनों कर्म भार भरे कैसे भवसिंधु तरैं, पाथरकी नाव कहूं पानीमाहिं तरी है ॥ ४२ ॥

(१४)

इंद्रिनिके भोगभाव विषय कहावैं और, क्रोधादिक भाव ते कषायरूप वरनी । इन्हैं सर्व सिद्धांतमें पाप ही मथन करी, तथा इन्हैं धारै सोऊ पापी उर धरनी ॥ ऐसे पाप भारकरि भरे जे पुरुष ते सु,—भक्तनिको कैसे निसतारें निरवरनी ।

आपु न तरेंगे औ न तारेंगे सु भक्तनिको, दोनों पाप भार भरे भोगैं पाप करनी ॥ ४३ ॥

दोहा।

विषय कषायी जीवको, गुरुकरि सेयें मीत।
उत्तम फल उपजै नहीं, यह दिढ़ करु परतीत ॥ ४४ ॥

(१५)

मत्तगयंद।

जो सब पाप क्रिया तजिकै, सब धर्मविषैं समता विसतारैं।
ज्ञान गुनादि सबै गुनको, जो अराधत साधत हैं श्रुतिद्वारैं ॥
होंहिं सोई शिवमारगके, वर सेवनहार मुनीश उदारैं।
आपु तरैं भविको भव तारहिं, पावन पूज्य त्रिलोकमझारैं ॥४५॥

(१६)

मनहरण।

अशुभोपयोग जो विमोह रागदोष भाव, तासतैं रहित होहि मुनी निरगंथ है। शुद्ध उपयोगकी दशामें केई रमैं केई, शुभ उपयोगी मथैं विवहार मंथ है ॥ तेई भव्य जीवनिको तारैं हैं भवोदधितैं, आपु शिवरूप पुन्यरूप पूज पंथ है। तिनहीकी भक्तितैं भविक शुभथान लहैं, ऐसे चित चेत वृंद भाषी जैनग्रंथ है ॥ ४६ ॥

(१७)

माधवी।

तिहि कारनतैं गुन उत्तमभाजन, श्रीमुनिको जब आवत देखो।
तब ही उठि वृंद खड़े रहिकै, पद वंदि पदांबुजकी दिशि पेखो॥

गुनवृद्ध विशेषनिकी इहि भाँति, सदीव करो विनयादि विशेखो ।
उपदेश जिनेशको जान यही, विधिसों वरतो चहुसंघ सरेखो ४७

(१८)

मनहरण ।

आवत विलोकि खड़े होय सनमुख जाय, आदरसों आइये आइये ऐसे कहिकै । अंगीकार करिकै सु सेवा कीजै वृंदावन, और अन्न पानादिसों पोखिये उमहिकै ॥ बहुरि गुननिकी प्रशंसा कीजे विनयसों, हाथ जोरे रहिये प्रनाम कीजै ठहिकै । मुनिमहाराज वा गुनाधिक पुरुषनिसों, याही भाँति कीजे श्रुतिसीखरीति गहिकै ॥ ४८ ॥

(१९)

छप्पय ।

जे परमागम अर्थमाहिं, परवीन महामुनि ।
अरु संजम तप ज्ञान आदि, परिपूरित हैं पुनि ॥
तिनहिं आवतौ देखि, तवहि मुनिहूकहँ चहिये ।
खड़े होय सनमुख सुजाय, आदर निरबहिये ॥
सेवा विधि अरु परिनाम विधि, दोनों करिवो जोग है ।
है उत्तम मुनिमगरीति यह, जहँ सुभावसुखभोग है ॥ ४९ ॥

दोहा ।

दरवित जे मुनि भेष धरि, ते हैं श्रमनाभास ।
तिनकी विनयादिक क्रिया, जोग नहीं है भास ॥ ५० ॥

(२०)

रूपक कवित्त ।

संजम तप सिद्धांत सूत्र, इनहू करि जो मुनि है संजुक्त ।
जो जिनकथित प्रधान आतमा, सुपरप्रकाशकतैं वर शुक्त ॥
तासु सहित जे सकल पदारथ, नहिं सरदहै जथा जिनउक्त ।
तब सो मुनि न होय यह जानो, है वह श्रमनाभास अजुक्त५१॥

(२१)

मत्तगयन्द ।

श्रीजिनशासनके अनुसार, प्रवर्ततु हैं जे महामुनिराई ।
जो तिनको लखि दोष धरै, अनआदरतैं अपवाद कराई ॥
जे विनयादि क्रिया कही वृंद, करै न तहां सो सुहर्ष बढ़ाई ।
सो मुनि चारितभ्रष्ट कहावत, यों भगवंत भनी सुनि भाई ५२

(२२)

द्रुमिला ।

अपने गुनतैं अधिके जे मुनी, गुन ज्ञान सु संजम आदि भरै ।
तिनसों अपनी विनयादि चहै, हम हू मुनि हैं इमि गर्व धरै ॥
तब सो गुनधारक होय तऊ, मुनि मारगतैं विपरीत चरै ।
वह मूढ़ अनंत भवावलिमें, भटकै न कभी भवसिंधु तरै ५३

(२३)

मत्तगयन्द ।

आपुविषैं मुनिके पदके गुन, हैं अधिके उतकिष्ट प्रमानै ।
सो गुनहीन मुनीननकी, जो करै विनयादि क्रिया मनमानै ॥

तो तिनके उरमाहिं मिथ्यात,-पयोग लसै लखि लेहु सयानै ।
है यह चारितभ्रष्ट मुनी, अनरीति चलै जतिरीति न जानै ५४

दोहा ।

विनय भगत तो उचित है, बड़े गुनिनिकी वृंद ।
हीन गुनिनिको वंदतैं, चारित होत निकंद ॥ ५५ ॥

(२४)

कवित्त-मात्रिक ।

जद्दिप जिनसिद्धांत सूत्रकरि, जानत है निहचै सब वस्त ।
अरु कषाय उपशमकरि जो मुनि, करत तपस्या अधिक प्रशस्त ॥
जो न तजै लौकिक जनसंगति, तो न होय वह मुनि परशस्त ।
संगरंगतैं भंग होय व्रत, यातैं तजिय कुसुंगत रस्त ॥ ५६ ॥

दोहा ।

जैसे अगिनि मिलापतैं, शीतल जल है गर्म ।
तैसे पाय कुसंगको, होय मलिन शुभ कर्म ॥ ५७ ॥
तातैं तजो कुसुंग मुनि, जो चाहो कुशलात ।
बसो सुसंगत सुमुनिके, जुतविवेक दिनरात ॥ ५८ ॥
कही कुसंगतकी कथा, बहुत भाँति श्रुतिमाहिं ।
विषम गरल[1] सम त्यागि तिहि, चलो सुसंगति छाहिं ॥५९॥

(२५)

द्रुमिला ।

निरग्रंथ महाव्रतधारक हो करि, जो इहि भाँति करै करनी ।
वरतै इस लौकिक रीतिविषैं, करै वैदक[2] जोतिक[3] मंतरनी[4] ॥

---

१ विष । २ वैद्यक । ३ ज्योतिष । ४ मंत्रविद्या ।

वह लौकिक नाम मुनी कहिये, परिभ्रष्ट दशा तिसकी वरनी
तपसंजमसंजुत होय तऊ, न तरै भवसागर दुस्तरनी ॥ ६० ॥

दोहा।

लौकिकजनमन मोदके, जेते विविध विधान।
तिनमें वरते लगनजुत, सो लौकिक मुनि जान ॥ ६१ ॥
ताकी संगतिको तजहिं, उत्तम मुनि परवीन।
नातैं संगति दोषतैं, सज्जन होय मलीन ॥ ६२ ॥

(२६)

छप्पय।

तिस कारन मुनिको कुसंग, तजिकै यह चहियत।
निज गुनके समतूल होहि, कै अधिक सु महियत (?) ॥
तिन मुनिकी सतसंगमाहिं, तुम बसौ निरंतर।
जो सब दुखतैं मुक्ति दशा, चाहो अभिअंतर ॥
समगुन मुनिकी सतसंगतैं, होय सुगुनरच्छा परम।
गुनवृद्ध मुनिनिकी संगतैं, बढ़ै सुगुन आतमधरम ॥ ६३ ॥

दोहा।

जलमें शीतल गुन निरखि, ताकी रच्छाहेत।
शीत भौनके कौनमें, राखहिं सुबुध सचेत ॥ ६४ ॥
यह समान गुनकी सुखद, संगति भाषी मीत।
अब भाषों गुनअधिकके, सतसंगतिकी रीत ॥ ६५ ॥
जैसे वरफ कपूर पुनि, शीत आदि संजोग।
होत नीर गुन शीत अति, यह गुन अधिक नियोग ॥ ६६ ॥

काव्य-(मात्रा २४)

तातैं जे मुनि महामोख,-सुखके अभिलाखी।
तिनको यह उपदेश, सुखद है श्रुतिकी साखी॥
तजि कुसंग सरवथा, सुपथमें चलो बुधातम।
बसो सदा सतसंगमाहिं, साधो शुद्धातम॥ ६७॥

मनहरण।

प्रथम दशामें शुभ उपयोगसेती उतपन्न जो प्रवृत्ति वृंद ताको अंगीकार है। पीछेसों सु संजमकी उतकिष्टताई-करि, परम दशाको अवधारो बुद्धिधार है॥ पाछें सर्व वस्तुकी प्रकाशिनी केवलज्ञाना-नन्दमई शास्वती अवस्था जो अपार है। ताको सरवथा पाय अपने अतिंद्री सुख, तामें लीन होहु यह पूरो अधिकार है॥ ६८॥

माधवी।

तिस कारनतैं समुझाय कहों, मुनि वृंदनिको सतसंगति कीजे।
अपने गुनके जे समान तथा, परधान मुनीनिकी संग गहीजे॥
जदि चाहत हौ सब दुःखनिको खय, तो यह सीख सु सीस धरीजे।
नित वास करो सतसंगतिमाहिं,कुसंगतिको सु जलंजलि दीजे६९

दोहा।

ज्यों जुग मुकता सम मिलत, कीमत होत महान।
त्यों सम सतसंगत मिलत, बढ़त सुगुन अमलान॥७०॥

ज्यों पारस संजोगतैं, लोह कनक ह्वै जाय।
गरल[1] अमिय[2] सम गुनधरत, उत्तम संगति पाय ॥ ७१ ॥
जैसे लोहा काठ सँग, पहुँचै सागर पार।
तैसे अधिक गुनीनि सँग, गुन लहि तजहि विकार ॥७२॥
ज्यों मलयागिरिके विषैं, बावन चंदन जान।
परसि पौन[3] तसु और तरु, चंदन होंहिं महान ॥ ७३ ॥
त्यों सतसंगति जोगतैं, मिटै सकल अपराध।
सुगुन पाय शिवमग चलै, पावै पद निरुपाध ॥ ७४ ॥
देख कुसंगति पायके, होंहिं सुजन सविकार।
अगिनि—जोग जिमि जल गरम, चंदन होत अँगार ॥७५॥
छीर[4] जगत जन पोषिकै, करत बीजदुति[5] गात।
सोई अहिमुख परत ही, हालाहल ह्वै जात ॥ ७६ ॥
तातैं बहुत कहों कहा, जे ज्ञाता परवीन।
ते थोरेहीमें लखहिं, संग रंगकी बीन ॥ ७७ ॥
दुर्जनको उपदेश यह, निष्फल ऐसें जात।
पाथर परको मारिबो, चोखो तीर नसात ॥ ७८ ॥
तातैं निजहित हेतको, गहन करहिं बुधिधार।
हंस पान पैं[6]यको करत, जिमि तजि वारिविकार ॥ ७९ ॥
यों मत चितमें जानियौ, मुनिकहँ यह उपदेश।
श्रावकको तो नहिं कह्यो, मूल ग्रंथमें लेश ॥ ८० ॥

१ विष। २ अमृत। ३ पवन—हवा। ४ दूध। ५ विजली जैसी कांति। ६ दूध।

मुनिके मिष सबको कह्यो, न्याय रीति निरबाह।
जिहि मगमें नृप पग धरै, प्रजा चलै तिहि राह॥८१॥
ऐसो जानि हिये सदा, जिनआगम अनुकूल।
करो आचरन हे भविक, करम जलैं ज्यों तूल॥ ८२॥
परम पुन्यके उदयतैं, मिल्यौ सुघाट सुजोग।
अब न चूक भवि वृंद यह, नदी नाव संजोग॥८३॥
सकल ग्रंथको मंथके, पंथ कह्यो यह सार।
कुंदकुंद गुरुदेव सो, मोहि करो भव पार॥ ८४॥
जयवंतो वरतौ सदा, श्रीसरवज्ञ उदार।
जिन भाष्यौ यह मुकतिमग, श्रीमत्-प्रवचनसार॥८५॥
यह मुनि शुभ आचारको, पूर्ण भयो अधिकार।
सो जयवंतो होहु जग, रविशशिकी उनिहार॥ ८६॥
मंगलकारी जगत गुरु, शुद्ध सिद्ध अरहंत।
[illegible] याही [illegible]तैं किये, सकल करमको अंत॥ ८७॥
तातैं परम पुनीत यह, जिनशासन सुखकंद।
वृंदावन सेवत सदा, दायक सहजानंद॥ ८८॥

अथ पञ्चरत्नतत्त्वस्वरूपो लिख्यते।

मंगलाचरण। दोहा।

पंच परमपद वंदिकै, पंचरतनको रूप।
गाथा अरथ विलोकिकै, लिखौं सुखद रसकूप॥ ८९॥
मानो इस सिद्धांतके, एई पांचौं रत्न।
मुकुटसरूप विराजहीं, उर धरिये जुत जत्न॥ ९०॥
[illegible]नेकांत भगवंतमत, ताको जुत संक्षेप।
दरसावत हैं रतन यह, नय प्रमान निक्षेप॥ ९१॥
और यही संस[illegible]थिति, मोक्षस्थिति विरतंत।
प्रगट करत हैं तासुतैं, ह[illegible] सदा जयवंत॥ ९२॥
पंचरतनको नाम अब, सुनो भाव[illegible] अभिराम।
उर सरधा दिढ़ धारिकै, वेगि लहो शिव[illegible]॥ ९३॥

छप्पय।

प्रथम तत्त्व **संसार**, **मोक्ष** दूजो पुनि जानो।
मोक्षतत्त्वसाधक तथैव, **साधन** उर आनो॥
सर्वमनोरथ सुखद,—थान शिष्यनिको वरनी।
शास्त्रश्रवणको लाभ, तुरित भवसागर तरनी॥
यह पंचरतन इस ग्रंथमें, सकल ग्रंथ मथिके धरे।
वृंदावन जो सरधा करै, सो भव तरि शिवतिय वरे॥९४॥

(१)

छप्पय ।

जो मुनिमुद्रा धारि, अर्थ अजथारथ पकरी ।
जथा गोह गहि भूमि, तथा हारिलने लकरी ॥
जो हम निश्चय किया, सोइ है तत्त्व जथारथ ।
इमि हठसों एकांत, गहै वर्जित परमारथ ॥
सो भमै अगामीकालमें, पंचपरावर्त्तन करत ।
दुखफल अनंत भोगत सदा, कबहुँ न भवसागर तरत ॥९५॥

दोहा ।

मिथ्याबुद्धि विकारतैं, जे जन अज्ञ अतीव ।
अजथारथ ही तत्त्व गहि, हठजुत रहत सदीव ॥ ९६ ॥
जद्दिप मुनिमुद्रा धरैं, तद्दिप मुनि नहिं सोय ।
सोई संसृत तत्त्व है, इहां न संशय कोय ॥ ९७ ॥
ताको फल परिपूर्ण दुख, पंच परावृतरूप ।
भमै अनंते काल जग, यों भाषी जिनभूप ॥ ९८ ॥
और कोइ संसार नहिं, संसृत मिथ्याभाव ।
जिन जीवनिके होय सो, संसृततत्त्व कहाव ॥ ९९ ॥

(२)

अनंगशेखर-दंडक ।

मिथ्या अचार टारिके जथार्थ तत्त्व धारिके, विवेक दीप वारिके स्वरूप जो निहारई । प्रशांत भाव पायके विशुद्धता बढ़ाय पुव्व,–बंध निर्जरायके अबंध रीति धारई ॥ न सो

भमै भवावली तरै सोई उतावली, सोई मुनीशको पदस्थ र्णता सुसारई। यही सु मोखतत्त है त्रिलोकमें महत्त है, सोई दयानिधान भव्य वृंदको उधारई ॥ १०० ॥

दोहा।

जो परदरवनि त्यागिकै, है स्वरूपमें लीन।
सोई जीवनमुक्त है, मोक्षतत्त्व परवीन ॥ १०१ ॥

(३)

मनहरण।

सम्यक प्रकार जो पदारथको जानतु है, आपा पर भेद भिन्न अनेकांत करिकै। इंद्रिनिके विषैमैं न पागै औ परिग्रह,-पिशाच दोनों भाँति तिन्हें त्यागै धीर धरिकै ॥ सहज स्वरूपमें ही लीन सुखसैन मानो, करम कपाटको उघारै जोर भरिकै। ताहीको जिनिंद मुक्तसाधक बखानतु हैं, सोई शुद्ध साध ताहि बंदों भर्म हरिकै ॥ १०२ ॥

दोहा।

ऐसे सुपरविवेकजुत, लसैं शुद्ध जे साध।
मोखतत्त्वसाधक सोई, वर्जित सकल उपाध ॥ १०३ ॥

(४)

मनहरण।

शुद्ध वीतरागता सुभावमें जु लीन शिव,-साधक श्रमन सोई मुनिपदधारी है। ताही सु विशुद्ध उपयोगीके दरश ज्ञान, भाषी है जथारथपनेसों विसतारी है ॥ फेर ताही शुद्ध

मोखमारगी मुनीशहीके, निराबाघ मोखकी अवस्था अवि-
कारी है । सोई सिद्धदशामें विराजै ज्ञानानंदकंद, निरद्वं
द्वंद ताहि बंदना हमारी है ॥ १०४ ॥

दोहा ।

मोक्षतत्त्वसाधन यही, शुद्धुपयोगी साध ।
सकलमनोरथसिद्धिप्रद, शुद्ध सिद्ध निरबाध ॥ १०५ ॥

(५)

छप्पय ।

जो यह शासन भलीभाँति, जानै भवि प्रानी ।
श्रावक मुनि आचार, जासुमधि सुगुरु बखानी ॥
सो थोरे ही कालमाहिं शुद्धातम पावै ।
द्वादशांगको सारभूत, जो तत्त्व कहावै ॥
मुनि कुंदकुंद जयवंत जिन, यह परमागम प्रगट किय ।
वृंदावनको भव उदधितैं, दै अवलंब उधार लिय ॥ १०६ ॥
द्वादशांगश्रुतिसिंधु, मथन करि रतन निकासा ।
सुपरभेदविज्ञान, शुद्ध चारित्र प्रकासा ॥
सो इस प्रवचनसारमाहिं, गुरु वरनन कीना ।
अध्यातमको मूल, लखहिं अनुभवी प्रवीना ॥
मुनि कुंदकुंदकृत मूल जु सु, अमृतचंद टीका करी ।
तसु हेमराजने वचनिका, रची अध्यातमरसभरी ॥ १०७ ॥

मनहरण ।

दोइ सौ पछत्तर पराकृतकी गाथामाहिं, कुंदकुंदस्वामी

रची प्रवचनसार है। अध्यातमबानी स्याद्व।
पृतैं, सुपरप्रकाशबोध होत निरधार है ॥ निक॰
ीके भावभौनमाहिं याकी, दीपशिखा जगै भ।
अंधकार है। मुख्य फल मोख औ अमुख्य शक्रचक्रि
वृंदावन होत अनुक्रम भव पार है ॥ १०८ ॥

अथ कविव्यवस्था लिख्यते।

छप्पय।

अगरवाल कुल गोल, गोत बं॰
धरमचंद जसु पिता, शित॰।
तिन निजमतिमित बाल, ख्याल सम
काशीनगरमँझार, सुपरहितहेत सुभाये
प्रिय उदयराज उपगारतैं; अब रचना पू ई।
हीनाधिक सोधि सुधारियौ, जे सज्जन सग॰ ई ॥ १०९ ॥

मनहरण।

वाराणसी आरा ताके बीच बसै बारा सुरसरिके किनारा तहां जनम हमारा है। ठारै अड़ताल माघ सेत चौदै सोम पुष्य, कन्या लग्न भानुअंश सत्ताइस धारा है ॥ साठेमाहिं काशी आये तहां सतसंग पाये, जैनधर्ममर्म लहि भर्म भाव हारा है। सैली सुखदाई भाई काशीनाथ आदि जहां, अध्यातमबानीकी अखंड बहै धारा है ॥ ११० ॥

छप्पय ।

सिद्ध आदृतराम, दया मोपै चित लाये ।
श्रीसुखलालजीयसों, आनि मिलाये ॥
तिनपै श्रीजिनधर्ममर्म, हमने पहिचाने ।
पीछे बकसूलाल मिले, मोहि मित्र सयाने ॥
तिनके नाटकत्रयी पुनि, औरहु ग्रंथ अनेक जब ।
कवितापर रुचि बढ़ी, रचो छंद भवि वृंद अब ॥
विक्रमभूप, ठारसौ त्रेशठमाहीं ।
...तक बन्यौ, मिली सतसंगतिछाहीं ॥
...को छंद बनावों ,
...जासुतैं निजनिधि पावों ॥
...करी, चित न रुची तब पुनि रची
...अब रची, अनेकांत रससों मची ॥

द्वादश
सुपरके
सो

अथ ग्रन्थपरिसमाप्तिमंगल ।

दोहा ।

बंदों श्रीस...ज्ञ जो, निराबरन निरदोष ।
विघ्नहरन मंगलकरन, मनवांछित सुख पोष ॥ १

पंचपरमगुरुकौ नमो, उर धरि परम सनेह ।
भवदधितैं भवि वृंदको, पार उतारत तेह ॥ १

जिनवानी जिनधर्मको, बंदों बारंबार ।
जिस प्रसादतैं पाइये, ज्ञानानंद अपार ॥ ११५ ॥

१ यह दोहा छंदशतकमें भी है ।